VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
प्रथम वर्ष
(सर्टिफिकेट कोर्स)
सेमेस्टर-I

राजनीतिशास्त्र

अधिकारों एवं विधियों के प्रति जागरूकता

SYLLABUS

UNIT-I

Preamble, Right to Equality, Right to Freedom, Cyber Crime, Cyber Security.

UNIT-II

Karma Theory of Right, Rights and Obligations, Right to Education, Citizen's Charter.

UNIT-III

Gender Sensitivity, Unity in Diversity, Nation Building, Affirmative Action, Universal Human Rights.

UNIT-IV

Govt. Policies and Campaigns: Practical Teachings Rights to Information, Lokpal.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : भारतीय संविधान : समानता एवं स्वतन्त्रता का अधिकार ...3
UNIT-II : अधिकार, कर्त्तव्य एवं नागरिक चार्टर ...32
UNIT-III : लैंगिक संवेदनशीलता ...52
UNIT-IV : सरकारी नीतियाँ, अभियान एवं लोकपाल ...78
○ मॉडल पेपर ...88

UNIT-I

भारतीय संविधान : समानता एवं स्वतन्त्रता का अधिकार
Indian Constitution : Rights to Equality and Freedom

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'प्रस्तावना' से आपका क्या तात्पर्य है?

उत्तर प्रस्तावना, संविधान के परिचय अथवा भूमिका को कहते हैं। इसमें संविधान का सार होता है। प्रख्यात् न्यायविद् व संवैधनिक विशेषज्ञ एन०ए० पालकीवाला ने प्रस्तावना को 'संविधान का परिचय पत्र' कहा है।

प्र.2. भारत के संविधान की प्रस्तावना में किन-किन बातों को सम्मिलित किया जाता है?

उत्तर प्रत्येक आदर्श संविधान की भाँति भारत के संविधान में भी प्रस्तावना का उल्लेख किया गया है। प्रस्तावना में संविधान के मुख्य लक्ष्यों, विचारधाराओं तथा राज्य के उत्तरदायित्वों का वर्णन किया गया है।

प्र.3. भारतीय संविधान की प्रस्तावना का एक प्रमुख उद्देश्य लिखिए।

उत्तर भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनेक उद्देश्य हैं, उनमें से एक है—यह संविधान की उत्पत्ति को अभिव्यक्त करती है। इसके द्वारा संविधान की विशिष्ट वस्तुस्थितियों का ज्ञान होता है।

प्र.4. 'संविधान की प्रस्तावना' का क्या महत्त्व है?

उत्तर 'संविधान की प्रस्तावना' के महत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. यह संकेत करती है कि देश की सरकार कैसे चलायी जाए।
2. इसमें सरकार के सम्मुख नये समाज के निर्माण हेतु उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है।
3. इससे यह पता चलता है कि संविधान देश में किस प्रकार की शासन-व्यवस्था स्थापित करना चाहता है।

प्र.5. संविधान का उद्देश्य प्रस्ताव किस नेता द्वारा किस सन् में प्रस्तुत किया गया था?

उत्तर संविधान का उद्देश्य प्रस्ताव सन् 1946 में पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

प्र.6. प्रस्तावना के चार मूल तत्त्व कौन-से हैं?

उत्तर प्रस्तावना में चार मूल तत्त्व हैं—

1. **संविधान के अधिकार का स्रोत**—प्रस्तावना कहती है कि संविधान भारत के लोगों से शक्ति अधिगृहीत करता है।
2. **भारत की प्रकृति**—यह घोषणा करती है कि भारत एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक व गणतान्त्रिक राजव्यवस्था वाला देश है।
3. **संविधान के उद्देश्य**—इसके अनुसार न्याय, स्वतन्त्रता, समता व बन्धुत्व संविधान के उद्देश्य हैं।
4. **संविधान लागू होने की तिथि**—यह 26 नवम्बर, 1949 की तिथि का उल्लेख करती है।

प्र.7. समानता की परिभाषा दीजिए।

उत्तर "समानता का तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से होता है जिसके कारण सब व्यक्तियों के विकास हेतु समान अवसर प्राप्त हो सकें।"

प्र.8. कानून के समक्ष समानता का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर जब सभी के लिए एक से कानून व एक से न्यायालय होते हैं तो नागरिकों को कानूनी समानता प्राप्त होती है। कानून नागरिकों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता है।

प्र.9. समानता के चार मुख्य प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर समानता के चार प्रकार निम्नलिखित हैं—1. प्राकृतिक समानता, 2. राजनीतिक समानता, 3. नागरिक समानता, 4. सामाजिक समानता।

प्र.10. राजनीतिक समानता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर राजनीतिक समानता का तात्पर्य है समान राजनीतिक अधिकार।

प्र.11. नागरिक समानता से क्या आशय है?

उत्तर नागरिक समानता से आशय है कि राज्य प्रत्येक नागरिक को वंश, जाति, धर्म, लिंग इत्यादि के आधार पर बिना भेदभाव किये समान रूप से नागरिक अधिकार प्रदान करे।

प्र.12. समानता के अधिकार को संविधान में किन अनुच्छेदों में वर्णित किया गया है?

उत्तर समानता के अधिकार को भारतीय संविधान में अनुच्छेद 14 से 18 तक वर्णित किया गया है।

प्र.13. सकारात्मक समानता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर सकारात्मक समानता से तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के विकास के समान अवसर प्रदान किये जाएँ।

प्र.14. प्राकृतिक समानता से क्या अभिप्राय है?

उत्तर प्राकृतिक समानता का अभिप्राय है कि प्रकृति ने सभी मनुष्यों को समान बनाया है।

प्र.15. विशिष्ट वर्ग का सिद्धान्त किसका विरोधी है?

उत्तर विशिष्ट वर्ग का सिद्धान्त राजनीतिक समानता का विरोधी है।

प्र.16. स्वतन्त्रता की परिभाषा लिखिए।

उत्तर बार्कर के अनुसार, "स्वतन्त्रता प्रतिबन्धों का अभाव नहीं, वरन् वह ऐसे नियन्त्रणों का अभाव है, जो मनुष्य के विकास में बाधक हों।"

प्र.17. स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ क्या है?

उत्तर अनुचित बन्धनों के स्थान पर उचित बन्धनों की व्यवस्था ही स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ है।

प्र.18. "स्वतन्त्रता और कानून एक-दूसरे के पूरक हैं।" स्पष्ट कीजिए।

उत्तर स्वतन्त्रता और कानून एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि कानूनों के पालन में ही मनुष्य की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है।

प्र.19. स्वतन्त्रता के दो प्रकार लिखिए।

उत्तर **1. आर्थिक स्वतन्त्रता**—प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार व अपने श्रम का पारिश्रमिक प्राप्त करने की स्वतन्त्रता ही आर्थिक स्वतन्त्रता है।

2. राजनीतिक स्वतन्त्रता—राज्य के कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेने की शक्ति ही राजनीतिक स्वतन्त्रता है।

प्र.20. कानून किस प्रकार स्वतन्त्रता का रक्षक है?

उत्तर कानून स्वतन्त्रता को जन्म देते हैं और उन्हें मर्यादित करते हैं।

प्र.21. "जहाँ कानून नहीं है, वहाँ स्वतन्त्रता नहीं हो सकती।" यह कथन किस विद्वान् का है?

उत्तर यह मत उदारवादी विचारक लॉक का है।

प्र.22. राजनीतिक स्वतन्त्रता के दो उदाहरण दीजिए।

उत्तर (i) मताधिकार, (ii) निर्वाचित होने का अधिकार।

प्र.23. "स्वतन्त्रता अति शासन की विरोधी है।" यह कथन किसने व्यक्त किया है?

उत्तर उपर्युक्त कथन सीले ने व्यक्त किया था।

प्र.24. साइबर अपराध से क्या आशय है?

उत्तर साइबर अपराध एक ऐसा अपराध है, जिसमें कम्प्यूटर का उपयोग ऑनलाइन अपराध Hacking, Phishing, Spamming करने के लिए किया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.25. साइबर अपराधों की रोकथाम हेतु देश में क्या उपाय किये गये हैं?

उत्तर भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम पारित करके साइबर अपराध रोकने का पूर्ण प्रयास किया है और सूचना प्रौद्योगिकी को भी कानूनी दायरे में लाने का कार्य किया। इस प्रकार के अपराधों पर नियन्त्रण के लिए 'साइबर क्राइम इन्वेस्टिगेशन सेल' और 'साइबर क्राइम रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट यूनिट' की स्थापना देश में की गई है। यद्यपि इन सभी उपायों के बाद भी दोष सिद्ध कर पाना एक कठिन कार्य सिद्ध हो रहा है।

प्र.26. साइबर अपराध की परिभाषा लिखिए।

उत्तर 'द आर्गेनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक कोऑपरेशन एण्ड डेवलपमेण्ट' (ओ०ई०सी०डी०) ने साइबर अपराध को इस प्रकार परिभाषित किया है—"बिना पूर्व अनुमति के आँकड़ों के संसाधन और संचरण से सम्बन्धित कोई भी गैरकानूनी, अनैतिक, अनधिकृत काम साइबर अपराधों की श्रेणी में आता है।"

प्र.27. डिजिटल हस्ताक्षर की सुरक्षा कैसे की जा सकती है?

उत्तर डिजिटल हस्ताक्षर का उपयोग सुरक्षित रूप से करने के लिए सदैव निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए—

1. इसे सदैव अपने पास सुरक्षित रखें।
2. डिजिटल हस्ताक्षर के उपयोग के लिए प्रदान किया गया डोंगल आपकी जिम्मेदारी है।
3. डिजिटल हस्ताक्षर का अनुचित उपयोग हो सकता है जिसकी जिम्मेदारी हस्ताक्षरधारक की होगी।
4. कभी भी डिजिटल हस्ताक्षर डोंगल के पासवर्ड को किसी को नहीं बताएँ।

प्र.28. साइबर सुरक्षा की क्या चुनौतियाँ हैं?

उत्तर साइबर सुरक्षा की महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ इस प्रकार हैं—

1. ब्लॉकचेन क्रान्ति, 2. रैनसमवेयर इवोल्यूशन, 3. आईओटी धमकी, 4. एआई विस्तार, 5. सर्वर रहित ऐप्स भेद्यता।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत के संविधान की प्रस्तावना महत्त्वपूर्ण क्यों है?

उत्तर इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कोई भी व्यक्ति सरकार को किसी न्यायालय में नहीं ले जा सकता यदि इसमें वर्णित कार्यों को सरकार पूरा नहीं करती फिर भी इस प्रस्तावना का अपना विशेष महत्त्व है क्योंकि यह देश की सरकार को वह मार्ग प्रशस्त करती है जिस पर सरकार को चलना चाहिए और यह स्पष्ट करती है कि संविधान के द्वारा किस प्रकार की सरकार का गठन करना चाहिए। यह निम्नलिखित तथ्यों पर जोर देकर संविधान के उद्देश्यों को स्पष्ट करती है—

1. यह गणराज्य के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाने पर जोर देती है।
2. भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी पन्थनिरपेक्ष प्रजातन्त्रीय गणराज्य बनाने की घोषणा करती है।
3. यह प्रत्येक व्यक्ति को एक जैसे अवसर प्रदान करने और उसके आदर-सम्मान को बनाये रखने का विश्वास दिलाती है।
4. यह व्यक्ति को हर प्रकार की स्वतन्त्रताएँ; जैसे—विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्राप्त कराने का उद्देश्य उपस्थित करती है।
5. यह राष्ट्र की एकता और अखण्डता बनाये रखने की आशा करती है।
6. यह सभी नागरिकों में बन्धुता बढ़ाने का आदर्श उपस्थित करती है।

प्र.2. भारत के संविधान की प्रस्तावना के मुख्य लक्षणों अथवा विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर संविधान की प्रस्तावना के मुख्य लक्षण अथवा विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. संविधान का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भारत को एक प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य बनाना है।
2. प्रस्तावना में भारतीय शासन—कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका के उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा की गई है।
3. भारत के संविधान का स्रोत जनता है। भारतीय शासन की अन्तिम सत्ता जनता में निहित है।
4. प्रस्तावना में स्वतन्त्रता तथा समानता पर विशेष बल दिया गया है।
5. हमारे संविधान की प्रस्तावना में न्याय के उल्लेख का विशिष्ट महत्त्व है।

6. प्रस्तावना में भारत के लिए लोकतान्त्रिक गणतन्त्र को अपनाने पर बल दिया गया है।
7. प्रस्तावना में भारत को एक लोकतान्त्रिक राज्य घोषित किया गया है।
8. प्रस्तावना में राष्ट्रीय एकता पर बल दिया गया है।
9. प्रस्तावना धर्मनिरपेक्ष राज्य के स्वप्न को साकार करती है।

प्र.3. किसी देश के लिए संविधान की आवश्यकता और महत्त्व का वर्णन कीजिए।

उत्तर आधुनिक लोकतन्त्रीय युग में, यह अत्यन्त आवश्यक है कि शासन-कार्य को ठीक प्रकार से चलाने तथा सरकारी पदाधिकारियों एवं जनता के अधिकारों का निर्धारण करने के लिए राज्य का एक संविधान हो। वर्तमान समय में किसी भी देश के लिए निम्नलिखित कारणों से संविधान बहुत अधिक महत्त्व रखता है—

1. संविधान के अभाव में देश में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। निश्चित नियमों के न होने से सरकारी कर्मचारी मनमानी करने लगेंगे और राज्य एक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन में परिवर्तित हो जाएगा, जिससे अविश्वास की भावना उत्पन्न हो जाएगी।
2. संविधान के अभाव में जनता को यह पता नहीं होगा कि सरकारी शासन के किस-किस अंग के क्या अधिकार हैं और राज्य तथा जनता के बीच क्या सम्बन्ध हैं। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि सरकार के विभिन्न अंगों की कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में किस प्रकार की भ्रान्ति या विवाद की सम्भावना कम-से-कम हो।
3. नागरिक भी अपनी स्वतन्त्रता तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संविधान का संरक्षण प्राप्त कर सकते हैं।
4. राज्य का संविधान होने से शासन के प्रत्येक अंग को अपने कार्य-क्षेत्र का ज्ञान होगा। उन्हें यह भी पता होगा कि उनके क्या-क्या अधिकार हैं और जनता के प्रति उन्हें किन-किन कर्त्तव्यों का पालन करना है।
5. संविधान राज्य तथा जनता दोनों के लिए ही एक प्रकाश-स्तम्भ के रूप में मार्गदर्शन का कार्य करता है। बिना संविधान के यह निश्चित है कि शासन तथा जनता दोनों ही अपने मार्ग से भटक जाएँगे। अत: किसी भी राज्य के अस्तित्व एवं प्रजा के सुखमय जीवन के निर्माण के लिए राज्य का एक संविधान होना अत्यन्त आवश्यक है और कोई भी राज्य संविधान के महत्त्व की उपेक्षा करके अपने अस्तित्व को खतरे में नहीं डाल सकता। अत: संविधान राज्य की नींव है।

प्र.4. प्रस्तावना में संशोधन की क्या सम्भावना है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

प्रस्तावना में संशोधन की सम्भावना
(Possibility of Amend the Preamble)

क्या प्रस्तावना में संविधान की धारा 368 के तहत संशोधन किया जा सकता है। यह प्रश्न पहली बार ऐतिहासिक केस केशवानंद भारती मामले (1973) में उठा। यह विचार सामने आया कि इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता; क्योंकि यह संविधान का भाग नहीं है। याचिकाकर्ता ने कहा कि अनुच्छेद 368 के जरिए संविधान के मूल तत्त्व में मूल विशेषताओं जोकि प्रस्तावना में उल्लेखित हैं, को ध्वस्त करने वाला संशोधन नहीं किया जा सकता।

हालाँकि उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। न्यायालय ने अपना यह मत बेरूबरी संघ (1960) के तहत दिया और कहा कि प्रस्तावना को संशोधित किया जा सकता है, बशर्ते मूल विशेषताओं में संशोधन नहीं किया जाये। दूसरे शब्दों में न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना में निहित मूल विशेषताओं को अनुच्छेद 368 के तहत संशोधित नहीं किया जा सकता।

अब तक प्रस्तावना को केवल एक बार 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के तहत संशोधित किया गया है। इसके जरिए इसमें तीन नये शब्दों को जोड़ा गया—समाजवादी, धर्म निरपेक्ष एवं अखण्डता। इस संशोधन को वैध ठहराया गया।

प्र.5. सकारात्मक और नकारात्मक समानता का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर **सकारात्मक समानता**—सकारात्मक समानता का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व के विकास हेतु पर्याप्त अवसर मिलें तथा राज्य के द्वारा उनमें कोई बाधा उत्पन्न न की जाए। यदि सभी को समान अवसर न मिलें तो मनुष्य का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता व प्रतिभा विकसित करने का समान अवसर प्राप्त होना चाहिए। **लास्की** के अनुसार, "समानता का तात्पर्य एक-सा व्यवहार करना नहीं, इसका तो आग्रह इस बात के लिए है कि मनुष्यों को सुख का समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए। उनके अधिकारों में किसी प्रकार का आधारभूत अन्तर स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

समानता मूलत: समाजीकरण की एक प्रक्रिया है—प्रथमत: इसका अभिप्राय विशेषाधिकारों की समाप्ति है और दूसरे, व्यक्तियों को विकास के पर्याप्त एवं समान अवसर उपलब्ध कराने से है।''

इस प्रकार राजनीति विज्ञान में समानता का तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से होता है जिसमें व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व के विकास के समान अवसर मिलें, जिससे असमानता का अन्त हो जाए।

नकारात्मक समानता—नकारात्मक स्वतन्त्रता का अर्थ है 'विशेषाधिकारों का अन्त'। समाज के किसी वर्ग-विशेष को जन्म, धर्म, जाति या रंग के आधार पर किसी प्रकार के विशेष अधिकार प्रदान न किये जाएँ, तो यह नकारात्मक समानता का द्योतक है। राज्य को चाहिए कि वह बिना भेदभाव के नागरिकों को व्यक्तित्व के विकास के समान अवसर प्रदान करे। लोगों में प्राकृतिक कारणों से अर्थात् जन्मजात असमानता हो सकती है, परन्तु अप्राकृतिक कारणों से अर्थात् पैतृक परिस्थितियों अथवा राज्य द्वारा किये गये भेदभाव के परिणामस्वरूप किसी प्रकार की असमानता नहीं होनी चाहिए। नकारात्मक समानता के उदाहरण हैं—छुआछूत का अन्त व सबको शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश का अधिकार।

प्र.6. कानून के समक्ष समानता के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।

उत्तर कानून के समक्ष समानता से आशय है कि कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान हैं तथा इसके अन्तर्गत सभी व्यक्तियों के लिए राज्य समान कानून बनाता है तथा उन्हें समान रूप से लागू करता है। कानून के सम्बन्ध में राज्य धनी-निर्धन, ऊँच-नीच, साक्षर-निरक्षर आदि का कोई भेद नहीं करता है। जन्म, वंश, लिंग तथा जन्मस्थान के आधार पर कानून किसी भी व्यक्ति को प्राथमिकता प्रदान नहीं करता है। पश्चिम बंगाल बनाम अनवर अली के मुकदमे में भारतीय उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि समान परिस्थितियों में सभी लोगों के साथ कानून का व्यवहार एक-सा होना चाहिए। कानूनी समानता के सम्बन्ध में इसी प्रकार की बात **डायसी** ने भी कही थी। **डायसी** के शब्दों में, ''हमारे देश में प्रत्येक अधिकारी चाहे वह प्रधानमन्त्री हो या पुलिस का सिपाही अथवा कर वसूल करने वाला, अवैधानिक कार्यों के लिए उतना ही दोषी माना जाएगा, जितना कि कोई अन्य नागरिक।''

प्र.7. समानता के मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर मार्क्सवादी दृष्टिकोण समानता के सन्दर्भ में इस बात का प्रतिपादन करता है कि जब तक समाज में विरोधी वर्गों का अस्तित्व रहेगा तब तक किसी भी रूप में समानता की स्थापना नहीं की जा सकती है। आर्थिक समानता का तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित व्यक्तिगत पूँजी को समाप्त करके उत्पादन, विनिमय के साधनों को समाज के सभी वर्गों में विभक्त न कर दिया जाए। अत: मार्क्सवादी आर्थिक समानता को भी समाज में एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण एवं उत्पीड़न के लिए उत्तरदायी मानता है। क्योंकि आर्थिक समानता के अभाव में किसी प्रकार की भी समानता स्थापित नहीं की जा सकती है।

प्र.8. ''आर्थिक समानता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता निरर्थक है।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर **प्रो० लास्की** के अनुसार ''राजनीतिक समानता आर्थिक समानता के बिना निरर्थक है क्योंकि राजनीतिक शक्ति आवश्यक रूप से आर्थिक शक्ति के हाथों में खिलवाड़ ही सिद्ध होगी।'' यदि व्यक्ति को समस्त राजनीतिक अधिकार जैसे मतदान का, चुनाव में प्रत्याशी होने का, सार्वजनिक पद धारण करने का आदि दे दिए जाएँ परन्तु उसे भोजन न मिले तो उसके लिए सम्पूर्ण प्रदत्त राजनीतिक अधिकार व्यर्थ हैं। एक गरीब व्यक्ति का धर्म, ईमान व राजनीति आदि सब-कुछ भोजन तक ही सीमित है। भारत में नागरिकों को मत का अधिकार है लेकिन आजीविका छोड़कर मतदान केन्द्र पर जाने का परिणाम क्या होगा? लोगों को चुनाव में खड़े होने का अधिकार है, किन्तु चुनाव कितने व्ययशील होते हैं। एक सामान्य व्यक्ति के लिए चुनाव में उम्मीदवार के रूप में आर्थिक व्यय की दृष्टि से सरल नहीं है। सामान्य व्यक्ति के पास जीवनयापन करने के सीमित साधन होते हैं, फिर वह राजनीतिक अधिकारों का कैसे उपभोग करेगा। समाजवादी विचारक इस बात पर बल देते हैं कि आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता व्यर्थ है। राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि के लिए आर्थिक सुरक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। आर्थिक विषमता को समाप्त करना चाहिए जिससे मनुष्य को शोषण से बचाया जा सके।

प्र.9. समानता को किस प्रकार प्रोत्साहित किया जा सकता है? संक्षेप में बताइए।

उत्तर समानता को निम्नलिखित उपायों द्वारा प्रोत्साहित किया जा सकता है—

1. **कानून का शासन**—समानता को प्रोत्साहित करने के लिए कानून का शासन आवश्यक है। 'कानून के शासन' से आशय है कि कानून के सामने सभी समान हैं। इंग्लैण्ड, भारत तथा अमेरिका में कानून का शासन है। इन देशों में नागरिकों की समानता की रक्षा कानून के शासन के द्वारा की गई है।

2. **संविधान**—संविधान द्वारा समानता को प्रोत्साहित किया जा सकता है। सरकार की शक्तियों को संविधान में स्पष्ट कर सरकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। इसलिए आधुनिक राज्यों के संविधान लिखित होते हैं जिससे सरकार की शक्तियों का स्पष्ट वर्णन किया जा सके।
3. **स्वतन्त्र प्रेस**—किसी भी राज्य में न्याय की समानता केवल तभी सुरक्षित रह सकती है जब वहाँ प्रेस स्वतन्त्र हो और प्रत्येक नागरिक अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त कर सकता हो।
4. **शक्तियों का विभाजन**—समानता की रक्षा के लिए शक्तियों का विभाजन होना चाहिए न कि केन्द्रीकरण। **ब्राइस** का मत है कि लोगों में समानता की भावना उत्पन्न करने के लिए राज्य में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को स्थापित करना आवश्यक है।

प्र.10. आर्थिक समानता के किन्हीं पाँच मुख्य तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर आर्थिक समानता के पाँच तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार, पर्याप्त मजदूरी तथा विश्राम के लिए पर्याप्त अवकाश प्राप्त होना चाहिए।
2. प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए; जैसे—वस्त्र, भोजन तथा आवास आदि की सुविधाएँ।
3. विभिन्न लोगों में आर्थिक विषमता की दूरी कम-से-कम होनी चाहिए।
4. बेकारी, वृद्धावस्था, बीमारी व अन्य ऐसी स्थितियों में लोगों को राज्य की ओर से आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए।
5. समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना चाहिए।

प्र.11. स्वतन्त्रता के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर यदि यह बात सत्य है कि बिना सत्ता के सामाजिक शक्ति और व्यवस्था नहीं रह सकती, तो यह भी उतना ही जरूरी है कि सत्ता के द्वारा स्थापित इस व्यवस्था के अन्तर्गत नागरिकों को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त हो। मानव के व्यक्तित्व के विकास में स्वतन्त्रता एक अनमोल निधि है। वैयक्तिक व राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए हजारों लोगों ने अनेक प्रकार की यातनाएँ हँसते हुए झेली हैं। **बर्ट्रेण्ड रसेल** के अनुसार, "स्वतन्त्रता की इच्छा व्यक्ति की एक स्वाभाविक प्रकृति है और इसी के आधार पर सामाजिक जीवन का निर्माण सम्भव है।" प्रसिद्ध विधिवेत्ता **पालकीवाला** के शब्दों में, "मनुष्य सदा ही स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर सर्वाधिक बहुमूल्य बलिदान देते रहे हैं। वे भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा आत्मा व धर्म की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण तक देते रहे हैं।"

प्र.12. स्वतन्त्रता के मार्क्सवादी दृष्टिकोण का वर्णन कीजिए।

उत्तर स्वतन्त्रता के मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार स्वतन्त्रता ऐसी स्थिति नहीं है जिसमें व्यक्ति को अकेला छोड़ दिया जाए, बल्कि स्वतन्त्रता की स्थितियाँ सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भों से सम्बद्ध होती हैं। तर्कसंगत उत्पादन प्रणाली के अन्तर्गत ही व्यक्ति सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र हो सकते हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में उत्पादन के प्रमुख साधनों पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होगा, कोई किसी का शोषण नहीं करेगा और उत्पादन की शक्तियाँ इतनी विकसित हो जाएँगी कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा और आवश्यकता की पूर्ति सरलता से कर सकेगा। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता का सही अर्थ उस समय सम्भव हो सकता है जब वह अभावों से मुक्त हो। उसे आत्मविश्वास के लिए जिन चीजों की आवश्यकता हो वे सब पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों।

प्र.13. 'लाँग वाक टू फ्रीडम' पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर 20वीं शताब्दी की महान विभूति नेल्सन मंडेला की आत्मकथा का शीर्षक 'लाँग वाक टू फ्रीडम' (स्वतन्त्रता के लिए लम्बी यात्र) है। इस पुस्तक में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के रंगभेदी शासन के विरुद्ध अपने व्यक्तिगत संघर्ष, गोरे लोगों के शासन की अलगाववादी नीतियों के विरुद्ध लोगों के प्रतिरोध और दक्षिण अफ्रीका के काले लोगों द्वारा सहन किये गये अपमान, कठिनाइयों और पुलिस अत्याचार के विषय में बातें की हैं। इन अलगाववादी नीतियों में एक शहर में घेराबन्दी किये जाने और देश में मुक्त आवागमन पर रोक लगाने से लेकर विवाह करने में मुक्त चयन तक पर प्रतिबन्ध लगाना शामिल है। सामूहिक रूप से इन सभी प्रतिबन्धों को नस्ल के आधार पर भेदभाव करने वाली रंगभेदी सरकार ने जबरदस्ती लागू किया था। मंडेला और उनके साथियों के लिए इन्हीं अन्यायपूर्ण प्रतिबन्धों और स्वतन्त्रता के रास्ते की बाधाओं को दूर करने का संघर्ष 'लाँग वाक टू फ्रीडम' (स्वतन्त्रता के लिए लम्बी यात्रा) था। विशेष बात यह है कि मंडेला का संघर्ष केवल काले या अन्य लोगों के लिए ही नहीं वरन् श्वेत लोगों के लिए भी था।

प्र.14. नागरिक स्वतन्त्रता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर समाज का सदस्य होने के कारण व्यक्ति को जो स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, उसको नागरिक स्वतन्त्रता की उपमा दी जाती है। नागरिक स्वतन्त्रता की रक्षा राज्य करता है। इसमें नागरिकों की निजी स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, सम्पत्ति का अधिकार, विचार-अभिव्यक्ति करने की स्वतन्त्रता, इकट्ठे होने तथा संघ इत्यादि बनाने की स्वतन्त्रता सम्मिलित हैं। **गैटिल** ने नागरिक स्वतन्त्रता का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि "नागरिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य उन अधिकारों एवं विशेषाधिकारों से है जिन्हें राज्य अपनी प्रजा हेतु उत्पन्न करता है तथा उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है।"

नागरिक स्वतन्त्रता विभिन्न राज्यों में अलग-अलग होती है। जहाँ लोकतन्त्रीय राज्यों में यह स्वतन्त्रता अधिक होती है, वहीं तानाशाही राज्यों में यह निम्न पायी जाती है। भारत के संविधान में नागरिक स्वतन्त्रता का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्र.15. आर्थिक स्वतन्त्रता पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर आर्थिक स्वतन्त्रता से आशय आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी उस स्थिति से है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपना जीवन-यापन कर सके। **लॉस्की** के शब्दों में, "आर्थिक स्वतन्त्रता का यह अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका अर्जित करने की समुचित सुरक्षा तथा सुविधा प्राप्त हो।"

जिस राज्य में भूख, निर्धनता, दीनता, नग्नता तथा आर्थिक अन्याय होगा वहाँ व्यक्ति कभी भी स्वतन्त्र नहीं होगा। व्यक्ति को पेट की भूख, अपने बच्चों की भूख तथा भविष्य में दिखाई देने वाली आवश्यकताएँ प्रत्येक पल दु:खी करती रहेंगी। व्यक्ति कभी भी स्वयं को स्वतन्त्र अनुभव नहीं करेगा तथा न ही वह नागरिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता का भली-भाँति उपभोग कर सकेगा। अत: राजनीतिक एवं नागरिक स्वतन्त्रता को हासिल करने के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता का होना परमावश्यक है। **लेनिन** ने उचित ही कहा है कि "आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में राजनीतिक अथवा नागरिक स्वतन्त्रता अर्थहीन है।"

प्र.16. "आर्थिक समानता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता निरर्थक है।" यह कथन स्पष्ट कीजिए।

उत्तर **लॉस्की** के अनुसार, "राजनीतिक समानता आर्थिक समानता के बिना निरर्थक है क्योंकि राजनीतिक शक्ति आवश्यक रूप से आर्थिक शक्ति के हाथों में खिलवाड़ ही सिद्ध होगी।" यदि व्यक्ति को समस्त राजनीतिक अधिकार जैसे मतदान का, चुनाव में प्रत्याशी होने का, सार्वजनिक पद धारण करने आदि के अधिकार दे दिये जाएँ परन्तु उसे पेटभर खाना न मिले तो उसके लिए सम्पूर्ण प्रदत्त राजनीतिक अधिकार व्यर्थ हैं। एक गरीब व्यक्ति का धर्म, ईमान व राजनीति आदि सब-कुछ रोटी तक ही सीमित हैं। भारत में नागरिकों को मत का अधिकार है पर रोजी छोड़कर मतदान केन्द्र पर जाने का परिणाम क्या होगा। लोगों को चुनाव में खड़े होने का अधिकार है, किन्तु चुनाव कितने व्ययशील होते हैं। क्या एक सामान्य व्यक्ति चुनाव लड़ सकता है। सामान्य व्यक्ति के पास जीवनयापन करने के सीमित साधन होते हैं, फिर वह राजनीतिक अधिकारों का कैसे उपभोग करेगा? समाजवादी विचारक इस बात पर बल देते हैं कि आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता व्यर्थ है। राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि के लिए आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। आर्थिक विषमता को समाप्त करना चाहिए जिससे मनुष्य का शोषण न हो।

प्र.17. स्वतन्त्रता और सत्ता के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

उत्तर कुछ विद्वानों का विचार है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता एवं सत्ता परस्पर विरोधी हैं। प्रभुसत्ता असीम है परन्तु स्वतन्त्रता पर कोई अंकुश नहीं होना चाहिए। सत्ता एवं स्वतन्त्रता साथ-साथ नहीं रह सकती है। वास्तव में न तो प्रभुसत्ता असीमित होती है और न ही स्वतन्त्रता अप्रतिबन्धित होती है। राज्य की प्रभुसत्ता के ऊपर अनेक प्रतिबन्ध होते हैं। स्वतन्त्रता की प्रकृति में ही प्रतिबन्ध निहित है, अन्यथा स्वतन्त्रता उच्छृंखलता में परिवर्तित हो जाएगी। स्वतन्त्रता के ऊपर अंकुश इसलिए जरूरी है कि अन्य नागरिकों को समान अवसर प्राप्त हों और सबल वर्ग समाज के विरुद्ध आचरण न कर सके। **गैटिल** ने इस सम्बन्ध में कहा है, "बिना प्रतिबन्धों के प्रभुसत्ता निरंकुश बन जाती है और बिना सत्ता के स्वतन्त्रता अराजकता को जन्म देती है।"

प्र.18. साइबर सुरक्षा हेतु राज्यों द्वारा कौन-से कदम उठाये गये हैं?

उत्तर साइबर सुरक्षा हेतु राज्यों द्वारा निम्नलिखित कदम उठाये गये हैं—

1. साइबर सुरक्षा के कार्यों हेतु भारतीय कम्प्यूटर आपात एजेन्सी टीम (ICERT) की नियुक्ति, धारा 70बी (IT Act)।
2. CII द्वारा सुरक्षा एवं शोध हेतु राष्ट्रीय नोडल एजेन्सी (NNA) का गठन, धारा 70ए (IT Act)।
3. प्रत्येक राज्य ने देश की राष्ट्रीय सुरक्षा, अर्थव्यवस्था, लोकव्यवस्था इत्यादि को प्रभावित करने वाली क्रिटिकल इन्फॉर्मेशन इन्फ्रास्ट्रक्चर (CII) को संरक्षित प्रणाली घोषित किया गया है, धारा 70 (IT Act)।

4. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ (2015) के मामले में धारा 66-ए को असंवैधानिक घोषित करते हुए रद्द कर दिया है।
5. आक्रामक एवं धमकी वाले सन्देश-धारा 66ए (सजा 3 वर्ष कारावास या ₹ 2 लाख जुर्माना)।
6. कम्प्यूटर साधन कोड से छेड़छाड-धारा 65 (सजा 3 वर्ष कारावास या ₹ 2 लाख जुर्माना)।
7. संरक्षित प्रणाली (Protective System) तक अनधिकृत पहुँच, धारा 70 (सजा 10 वर्ष कारावास या जुर्माना)।
8. अश्लील प्रकाशन धारा 67 (सजा 5 वर्ष कारावास या ₹ 5 लाख जुर्माना)।
9. साइबर आतंकवाद (Cyber Terrorism) (सजा आजीवन कारावास)।
10. पहचान या पासवर्ड चोरी (प्रतिरूपण) धारा 66सी, डी (सजा 8 वर्ष कारावास या ₹ 2 लाख जुर्माना)।

प्र.19. साइबर सुरक्षा का क्या अर्थ है? साइबर सुरक्षा क्यों महत्त्वपूर्ण है?

उत्तर साइबर सुरक्षा सूचना प्रौद्योगिकी की सुरक्षा से सम्बन्धित है। यह अनधिकृत उपयोगकर्त्ताओं से कम्प्यूटर, नेटवर्क, कार्यक्रमों और डेटा की रक्षा करने के लिए भी संदर्भित करता है।

साइबर वातावरण और उपयोगकर्त्ता की सम्पत्ति में संगृहीत जानकारी कम्प्यूटर उपकरणों, अनुप्रयोगों, सेवाओं और दूरसंचार प्रणालियों से जुड़ी है। साइबर सुरक्षा का उपयोग आपके इंटरनेट और नेटवर्क-आधारित डिजिटल उपकरणों और जानकारी को अनधिकृत पहुँच से बचाने के लिए भी किया जाता है। इसका उद्देश्य साइबर हमले के पूरे जीवन चक्र के दौरान सभी खतरे वाले अभिनेताओं के खिलाफ सम्पत्ति की रक्षा करना है।

आप सभी एक डिजिटल युग की दुनिया में रहते हैं जो एक साथ इंटरनेट बैंकिंग से लेकर सरकारी बुनियादी ढाँचे तक है, जहाँ कम्प्यूटर और अन्य उपकरणों पर डेटा संगृहीत किया जाता है। उस डेटा का एक हिस्सा संवेदनशील जानकारी हो सकती है, चाहे वह बौद्धिक सम्पदा हो, वित्तीय डेटा, व्यक्तिगत जानकारी या अन्य प्रकार के डेटा, जिनके लिए अनधिकृत पहुँच नकारात्मक चिन्ताएँ हो सकती हैं, जो हैक और अन्य सुरक्षा हमले वैश्विक अर्थव्यवस्था को खतरे में डाल सकते हैं।

संगठन पूरे नेटवर्क और अन्य उपकरणों के लिए संवेदनशील डेटा संचारित करते हैं, साइबर सुरक्षा उस जानकारी और प्रणालियों को संरक्षित करने या इसे संगृहीत करने के लिए उपयोग करते हैं।

प्र.20. साइबर सुरक्षा के क्या उद्देश्य हैं?

उत्तर साइबर सुरक्षा का मुख्य उद्देश्य जानकारी की चोरी, समझौता या हमला होने से बचाना है। इसे तीन लक्ष्यों द्वारा मापा जा सकता है जो निम्नलिखित हैं—

1. डेटा की गोपनीय रूप से रक्षा करें।
2. डेटा की अखण्डता को बनाये रखना।
3. अधिकृत उपयोगकर्त्ताओं के लिए डेटा की उपलब्धता को बढ़ावा देना।

ये तीन लक्ष्य गोपनीय रूप से, अखण्डता, उपलब्धता (सीआईए) त्रय, सभी सुरक्षा कार्यक्रमों का आधार बनाते हैं। इसे केन्द्रीय खुफिया एजेन्सी के साथ भ्रम से बचने के लिए उपलब्धता, अखण्डता और गोपनीयता (AIC) के रूप में भी जाना जाता है। तत्त्वों को सुरक्षा के तीन सबसे महत्त्वपूर्ण घटक माना जाता है।

गोपनीयता—यह गोपनीयता के बराबर है और जानकारी के अनधिकृत प्रकटीकरण से बचा जाता है। इसमें डेटा की सुरक्षा शामिल है, उन लोगों के लिए पहुँच प्रदान करना है, जिन्हें इसकी कंटेट के बारे में सीखने से रोकते हुए इसे देखने की अनुमति है। गोपनीयता सुनिश्चित करने के लिए डेटा एन्क्रिप्शन का एक अच्छा उदाहरण है।

अखण्डता—यह सुनिश्चित करने के लिए तरीकों को संदर्भित करता है कि डेटा वास्तविक, सटीक है और अनधिकृत उपयोगकर्त्ता संशोधन से सुरक्षित है। जानकारी को अनधिकृत तरीके से परिवर्तित नहीं किया गया है और जानकारी का वह स्रोत वास्तविक है।

उपलब्धता—यह अधिकृत लोगों द्वारा हमारे संवेदनशील डेटा तक विश्वसनीय और निरन्तर पहुँच की गारण्टी है।

प्र.21. साइबर सुरक्षा की आवश्यकता का उल्लेख कीजिए।

उत्तर साइबर सुरक्षा व्यक्तियों, साथ ही संगठनों, सरकारों, शैक्षिक संस्थानों और हमारे व्यवसाय का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। बच्चों और परिवार के सदस्यों को ऑनलाइन धोखाधड़ी से बचाने के लिए परिवार और माता-पिता के लिए यह आवश्यक है। वित्तीय सुरक्षा के संदर्भ में, हमारी वित्तीय जानकारी को सुरक्षित करना महत्त्वपूर्ण है जो हमारी व्यक्तिगत वित्तीय स्थिति को प्रभावित कर सकता है। इंटरनेट छात्रों, कर्मचारियों और शैक्षिक संस्थानों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है और कई ऑनलाइन जोखिमों के साथ सीखने के बहुत सारे अवसर प्रदान किये हैं।

इंटरनेट उपयोगकर्त्ताओं को यह समझने की आवश्यकता है कि ऑनलाइन धोखाधड़ी और पहचान की चोरी से खुद को कैसे बचाया जाए। छोटे और मध्यम आकार के संगठन सीमित संसाधनों और अपर्याप्त साइबर सुरक्षा कौशल के कारण विभिन्न सुरक्षा सम्बन्धी चुनौतियों का भी अनुभव करते हैं। प्रौद्योगिकियों का तेजी से विस्तार भी साइबर नेटवर्क को अधिक चुनौतीपूर्ण बना रहा और हमारे नेटवर्क और सूचना की सुरक्षा के लिए विभिन्न रूपरेखा या प्रौद्योगिकियाँ प्रस्तुत कर रहा है, लेकिन ये सभी केवल अल्पावधि के लिए सुरक्षा प्रदान करते हैं। हालाँकि, बेहतर सुरक्षा समझ और उचित रणनीति हमें बौद्धिक सम्पदा और व्यापार रहस्यों को बचाने और वित्तीय और प्रतिष्ठा हानि को कम करने में मदद कर सकती है।

अधिकांश समय, सरकारें अनुचित बुनियादी ढाँचे, जागरूकता की कमी और पर्याप्त धन के कारण कठिनाइयों का सामना करती हैं। सरकारी निकायों के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे समाज को विश्वसनीय सेवाएँ प्रदान करें, स्वस्थ नागरिक-से-सरकारी संचार बनाये रखें और गोपनीय जानकारी की रक्षा करें।

प्र.22. सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम, 2008 में साइबर सुरक्षा हेतु क्या उपाय किये गये हैं?

उत्तर सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम, 2008 में सर्ट-इन को साइबर सुरक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्यों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय एजेन्सी के रूप में कार्य करने हेतु डिजाइन किया गया है—

1. साइबर सुरक्षा घटनाओं का पूर्वानुमान और सतर्कता।
2. साइबर घटनाओं पर सूचना का संग्रह, विश्लेषण और उसका प्रसार करना।
3. साइबर घटना पर प्रतिक्रिया गतिविधियों का समन्वय।
4. साइबर सुरक्षा घटनाओं पर कार्यवाही हेतु आपातकालीन उपाय।
5. सूचना सुरक्षा पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में मार्गदर्शी सिद्धान्त, परामर्श, अति संवेदनशील टिप्पणियाँ तथा श्वेत पत्रों को जारी करना, साइबर घटनाओं को रोकना और सूचना प्रदान करना।

प्र.23. भारतीय भाषाओं के लिए सूचना प्रौद्योगिकी विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर भाषा प्रौद्योगिकी विकास भारत में आज ऐसे चरण में पहुँच गया है, जहाँ इसमें जनसाधारण को लाभान्वित करने वाले उपयोगिता अनुप्रयोगी के सृजन की क्षमता है, जिसके द्वारा लोग अपनी सामान्य भाषा में सूचना प्रौद्योगिकी समाधानों का अभिगम एवं इस्तेमाल कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त विभाग ने निःशुल्क रूप से फोंट, ओपन ऑफिस, ई-मेल क्लाइण्ट, इण्टरनेट ब्राउजर, शब्दकोश, परिवर्तन उपयोगिताओं आदि जैसे कुछ आधारभूत सूचना संसाधनों के प्रयोक्ताओं एवं विकासकर्त्ताओं को और अधिक प्रोत्साहित किया है, जिससे प्रयोक्ता अपनी आधारभूत समस्याओं का समाधान करने में उनका इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित होंगे तथा विकासकर्त्ताओं को उन्नत समाधान तैयार करने में सहायता प्राप्त होगी।

सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के अन्तर्गत टी०डी०आई०एल० कार्यक्रम के अन्तर्गत 22 संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त भारतीय भाषाओं के सॉफ्टवेयर टूल्स और फोंट्स जनसाधारण को निःशुल्क उपलब्ध कराने के लिए एक बड़ा प्रयास किया गया है ताकि भारतीय भाषाओं में आई०सी०टी० का व्यापक प्रसार किया जा सके। विभाग ने भाषा-सी०डी० भी जारी की है जिसमें सभी 22 संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त भारतीय भाषाओं के लिए सॉफ्टवेयर टूल्स और फोंट्स हैं। ये भाषा-सी०डी० प्रयोक्ताओं को औपचारिक अनुरोध पर भेजी जा रही है और इन्हें वेबसाइट से भी डाउनलोड किया जा सकता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संविधान में प्रस्तावना से आपका क्या तात्पर्य है? इसके उद्देश्य, प्रमुख तत्त्व तथा महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

प्रस्तावना का अर्थ
(Meaning of Preamble)

प्रत्येक संविधान की प्रस्तावना या उद्देशिका किसी संविधान के दर्शन को सार रूप में प्रस्तुत करने वाली संक्षिप्त अभिव्यक्ति होती है। प्रस्तावना संविधान के आधार को प्रदर्शित करती है। यदि किसी संविधान की धारा का अर्थ स्पष्ट नहीं होता है तो उस संविधान की प्रस्तावना का अध्ययन करके उसका अर्थ स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

सामान्यतया प्रत्येक अधिनियम का आरम्भ उद्देशिका से होता है जो उसके मुख्य आदर्शों एवं आकांक्षाओं का उल्लेख करती है। उद्देशिका अधिनियम के लक्ष्यों एवं नीतियों को समझने में सहायक होती है। भारतीय संविधान की उद्देशिका संविधान निर्माताओं के विचारों को जानने की **कुंजी** (Key) है। संविधान की रचना के समय उसके रचयिताओं का क्या उद्देश्य था तथा वे किन उच्चादर्शों को संविधान में स्थापित करना चाहते थे, जैसे प्रश्नों का जवाब उद्देशिका से ही जाना जा सकता है।

सर्वप्रथम अमेरिकी संविधान में प्रस्तावना को सम्मिलित किया गया था तदुपरान्त कई अन्य देशों ने इसे अपनाया, जिनमें भारत भी शामिल है, प्रस्तावना संविधान के परिचय अथवा भूमिका को कहते हैं। इसमें संविधान का सार होता है। प्रख्यात न्यायविद् व संवैधानिक विशेषज्ञ एन०ए० पालकीवाला ने प्रस्तावना को 'संविधान का परिचय पत्र' कहा है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना पंडित नेहरू द्वारा बनाये और पेश किये गये एवं संविधान सभा द्वारा अपनाये गये 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर आधारित है। इसे 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित किया गया, जिसने इसमें समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और अखण्डता शब्द सम्मिलित किये।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble of Indian Constitution)

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए और इसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, धर्म, विश्वास व उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाला बन्धुत्व बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्पित होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवम्बर, 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

प्रस्तावना के उद्देश्य (Aims of Preamble)

संविधान का रूप उसकी प्रस्तावना से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। संविधान की प्रस्तावना के तीन महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं—

1. इसके द्वारा संविधान के उद्देश्यों का ज्ञान होता है। साथ ही प्रस्तावना राज्य के रूप को व्यक्त करती है।
2. यह संविधान की उत्पत्ति को अभिव्यक्त करती है। इसके द्वारा संविधान के स्रोत का ज्ञान होता है।
3. यह संविधान के आधार को व्यक्त करती है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के प्रमुख तत्त्व (Main Elements of the Preamble of Indian Constitution)

1. **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य**—प्रस्तावना के अनुसार भारत एक **'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न'** (Sovereign) राष्ट्र होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि **भारत अपने आन्तरिक एवं बाह्य मामलों में किसी विदेशी सत्ता या शक्ति के अधीन नहीं है।** वह अपनी आन्तरिक एवं बाह्य विदेश नीति निर्धारित करने के लिए तथा किसी भी राष्ट्र के साथ मित्रता एवं सन्धि करने के लिए पूर्णत: स्वतन्त्र है। **इसकी प्रभुत्ता जनता में निहित है।**

   भारत की जनता ही सर्वोपरि होगी। जनता स्वयं शासक होगी एवं शासित भी।

   लोकतन्त्र से तात्पर्य है लोगों का तन्त्र अर्थात् जनता का शासन। अब्राहम लिंकन के अनुसार, लोकतन्त्रात्मक शासन जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा स्थापित शासन होता है। भारत में जनता अपने द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन चलाती है। इसे अप्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक प्रणाली या प्रतिनिधि प्रणाली कहा जाता है।

   एक लोकतान्त्रिक राज्यव्यवस्था को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—राजशाही और गणतन्त्र। राजशाही व्यवस्था में राज्य का प्रमुख (आमतौर पर राजा या रानी) उत्तराधिकारिता के माध्यम से पद पर आसीन होता है, जैसा कि ब्रिटेन। वहीं गणतन्त्र में राज्य प्रमुख हमेशा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक निश्चित समय के लिए चुनकर आता है।

   इसलिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना में गणतन्त्र का अर्थ यह है कि भारत का प्रमुख अर्थात राष्ट्रपति चुनाव के जरिए सत्ता में आता है। उसका चुनाव पाँच वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

   अब तक प्रस्तावना को केवल एक बार 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के तहत संशोधित किया गया है। इसके द्वारा इसमें तीन नये शब्दों को जोड़ा गया—समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं अखण्डता। इस प्रकार अब यह सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य कहलाएगा।

2. **स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व की स्थिति—स्वतन्त्रता का अर्थ है**—भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्वतन्त्रता का अर्थ, लोगों की गतिविधियों पर किसी प्रकार की रोकटोक की अनुपस्थिति तथा साथ ही व्यक्ति के विकास के लिए अवसर प्रदान करना है।

   प्रस्तावना हर व्यक्ति के लिए मौलिक अधिकारों के जरिए अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता सुरक्षित करती है। इनके हनन के मामले में कानून का दरवाजा खटखटाया जा सकता है।

जैसा कि प्रस्तावना में कहा गया है कि भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सफलतापूर्वक चलाने के लिए स्वतन्त्रता परम आवश्यक है। हालाँकि स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह नहीं है कि हर व्यक्ति को कुछ भी करने का लाइसेंस मिल गया हो। स्वतन्त्रता के अधिकार का इस्तेमाल संविधान में लिखी सीमाओं के भीतर ही किया जा सकता है। संक्षेप में कहा जाये तो प्रस्तावना में प्रदत्त स्वतन्त्रता एवं मौलिक अधिकार शर्तरहित नहीं हैं।

समानता का अर्थ है—समाज के किसी भी वर्ग के लिए विशेषाधिकार की अनुपस्थिति और बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करने के उपबन्ध।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना हर नागरिक को स्थिति और अवसर की समानता प्रदान करती है। इस उपबन्ध में समानता के तीन आयाम शामिल हैं—नागरिक, राजनीतिक व आर्थिक।

बन्धुत्व का अर्थ है—संविधान एकल नागरिकता के एक तन्त्र के माध्यम से भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करता है। मौलिक कर्त्तव्य (अनुच्छेद-51क) भी कहते हैं कि यह हर भारतीय नागरिक का कर्त्तव्य होगा कि वह धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय अथवा वर्ग विविधताओं से ऊपर उठ सौहार्द और आपसी भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करेगा।

प्रस्तावना कहती है कि बन्धुत्व में दो बातों को सुनिश्चित करना होगा। पहला, व्यक्ति का सम्मान और दूसरा, देश की एकता और अखण्डता।

3. **सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय**—प्रस्तावना में न्याय तीन भिन्न रूप में शामिल हैं—सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक। इनकी सुरक्षा मौलिक अधिकार व नीति निदेशक सिद्धान्तों के विभिन्न उपबन्धों के जरिए की जाती है। सामाजिक न्याय का अर्थ है—हर व्यक्ति के साथ जाति, रंग, धर्म, लिंग के आधार पर बिना भेदभाव किये समान व्यवहार। इसका मतलब है समाज में किसी वर्ग विशेष के लिए विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति और अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार।

   आर्थिक न्याय का अर्थ है कि आर्थिक कारणों के आधार पर किसी भी व्यक्ति से भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसमें सम्पदा, आय व सम्पत्ति की असमानता को दूर करना भी शामिल है। सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय का मिला-जुला रूप 'अनुपाती न्याय' को परिलक्षित करता है।

   राजनीतिक न्याय का अर्थ है कि हर व्यक्ति को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे, चाहे वो राजनीतिक दफ्तरों में प्रवेश की बात हो अथवा अपनी बात सरकार तक पहुँचाने का अधिकार।

4. **राष्ट्र की एकता और अखण्डता**—संविधान की प्रस्तावना के अनुरूप राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता के उद्देश्य को सुरक्षित रखना संविधान का प्रमुख दायित्व है। भारतीय संविधान राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न करता है। प्रस्तावना से हमें यह ज्ञात होता है कि संविधान सभा के सदस्यों के मस्तिष्क में राष्ट्रीय एकता के बीज विद्यमान थे। इसी कारण उन्होंने राष्ट्रीय एकता को अत्यधिक महत्त्व दिया; क्योंकि राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के द्वारा ही व्यक्ति और राष्ट्र की गरिमा सुरक्षित रह सकती है।

5. **विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास तथा धर्म की स्वतन्त्रता**—संविधान के प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि संविधान के अधीन प्रत्येक नागरिक को विचार-अभिव्यक्ति आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। इस प्रकार से हमारा संविधान पूर्ण रूप से लोकतान्त्रिक कहा जा सकता है; क्योंकि भारत की जनता स्वेच्छा से विचार कर सकती है और सरकार को परिवर्तित भी कर सकती है; अत: हमारे संविधान की आत्मा लोकतान्त्रिक है। साथ ही हमारा संविधान धर्मनिरपेक्ष या धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। सरकार की ओर से धर्मपालन पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

प्रस्तावना का महत्त्व (Importance of Preamble)

प्रस्तावना में उस आधारभूत दर्शन और राजनीतिक, धार्मिक व नैतिक मौलिक मूल्यों का उल्लेख है जो हमारे संविधान के आधार हैं। इसमें संविधान सभा की महान और आदर्श सोच उल्लिखित है। इसके अलावा यह संविधान की नींव रखने वालों के सपनों और अभिलाषाओं के परिलक्षण करती है। संविधान निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले संविधान सभा के अध्यक्ष सर अलादी कृष्णस्वामी अय्यर के शब्दों में, 'संविधान की प्रस्तावना हमारे दीर्घकालिक सपनों का विचार है।'

संविधान सभा की प्रारूप समिति के सदस्य के०एम० मुंशी के अनुसार, प्रस्तावना 'हमारी संप्रभु लोकतान्त्रिक गणराज्य का भविष्यफल है।'

संविधान सभा के एक अन्य सदस्य पंडित ठाकुर दास भार्गव ने संविधान की प्रस्तावना के सम्बन्ध में कहा, 'प्रस्तावना संविधान का सबसे सम्मानित भाग है। यह संविधान की आत्मा है। यह संविधान की कुंजी है। यह संविधान का आभूषण है। यह एक उचित स्थान है जहाँ से कोई भी संविधान का मूल्यांकन कर सकता है।'

सुप्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिशास्त्री सर अर्नेस्ट बार्कर संविधान की प्रस्तावना लिखने वालों को राजनीतिक बुद्धिमत्ता कहकर अपना सम्मान देते हैं। वह प्रस्तावना को संविधान का 'कुंजी नोट' कहते हैं। वह प्रस्तावना के पाठ से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल एंड पॉलिटिकल थ्योरी* (1951) की शुरुआत में इसका उल्लेख किया है।

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम० हिदायतुल्लाह मानते हैं, 'प्रस्तावना अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा के समान है, लेकिन यह एक घोषणा से भी ज्यादा है। यह हमारे संविधान की आत्मा है जिसमें हमारे राजनीतिक समाज के तौर-तरीकों को दर्शाया गया है। इसमें गम्भीर संकल्प शामिल हैं, जिन्हें 'एक क्रान्ति ही परिवर्तित कर सकती है।'

प्र.2. संविधान की प्रस्तावना के आधार पर भारतीय शासन व्यवस्था के स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

भारतीय शासन व्यवस्था का स्वरूप
(Nature of Indian Polity)

भारत के संविधान की प्रस्तावना भारत की शासन व्यवस्था के स्वरूप को पूर्ण रूप से स्पष्ट करती है। प्रस्तावना के अनुसार, भारत की स्थिति एक प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की है। अत: भारतीय शासन व्यवस्था की स्थिति निम्न प्रकार है—

1. **भारत सम्पूर्ण प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य है**—भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनुसार भारत एक प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य है। भारत न तो किसी अन्य देश पर निर्भर है और न ही किसी अन्य देश का डोमिनियन है। इसके ऊपर और कोई शक्ति नहीं है और यह अपने मामलों (आन्तरिक अथवा बाहरी) का निस्तारण करने के लिए स्वतन्त्र है।

   यद्यपि वर्ष 1949 में भारत ने राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वीकार करते हुए ब्रिटेन को इसका प्रमुख माना, तथापि संविधान से अलग यह घोषणा किसी भी तरह से भारतीय संप्रभुता को प्रभावित नहीं करती। इसी प्रकार भारत की संयुक्त राष्ट्र में सदस्यता उसकी संप्रभुता को किसी मायने में सीमित नहीं करती।

   एक संप्रभु राज्य होने के नाते भारत किसी विदेशी सीमा अधिग्रहण अथवा किसी अन्य देश के पक्ष में अपनी सीमा के किसी हिस्से पर से दावा छोड़ सकता है।

2. **भारत समाजवादी राज्य है**—वर्ष 1976 के 42वें संविधान संशोधन से पहले भी भारत के संविधान में नीति-निदेशक सिद्धान्तों के रूप में समाजवादी लक्षण मौजूद थे। दूसरे शब्दों में, जो बात पहले संविधान में अन्तर्निहित थी, उसे स्पष्ट रूप से जोड़ दिया गया है और फिर कांग्रेस पार्टी ने समाजवादी स्वरूप को स्थापित करने के लिए 1955 में अवाडी सत्र में एक प्रस्ताव पारित कर उसके अनुसार कार्य किया।

   यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय समाजवाद 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' है न कि 'साम्यवादी समाजवाद', जिसे 'राज्याश्रित समाजवाद' भी कहा जाता है, जिसमें उत्पादन और वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण और निजी सम्पत्ति का उन्मूलन शामिल है। लोकतान्त्रिक समाजवाद मिश्रित अर्थव्यवस्था में आस्था रखता है, जहाँ सार्वजनिक व निजी क्षेत्र साथ-साथ मौजूद रहते हैं। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय कहता है, "लोकतान्त्रिक समाजवाद का उद्देश्य गरीबी, उपेक्षा, बीमारी व अवसर की असमानता को समाप्त करना है।" भारतीय समाजवाद मार्क्सवाद और गाँधीवाद का मिला-जुला रूप है, जिसमें गाँधीवादी समाजवाद की ओर ज्यादा झुकाव है।

   उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की नयी आर्थिक नीति (1991) ने हालाँकि भारत के समाजवादी प्रतिरूप को थोड़ा लचीला बनाया है।

3. **भारत पन्थनिरपेक्ष राज्य है**—धर्मनिरपेक्ष शब्द को भी 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने भी 1974 में कहा था। यद्यपि 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' शब्द का स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेख नहीं किया गया था तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संविधान के निर्माता ऐसे ही राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इसीलिए संविधान में अनुच्छेद 25 से 28 (धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार) जोड़े गये।

   भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता की सभी अवधारणाएँ विद्यमान हैं अर्थात हमारे देश में सभी धर्म समान हैं और उन्हें सरकार का समान समर्थन प्राप्त है।

4. **भारत लोकतन्त्रीय राज्य है**—संविधान की प्रस्तावना में एक लोकतान्त्रिक राजव्यवस्था की परिकल्पना की गई है। यह प्रचलित संप्रभुता के सिद्धान्त पर आधारित है अर्थात सर्वोच्च शक्ति जनता के हाथ में हो।
लोकतन्त्र दो प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र में लोग अपनी शक्ति का इस्तेमाल प्रत्यक्ष रूप से करते हैं, जैसे—स्विट्जरलैण्ड में। प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के चार मुख्य औजार हैं, इनके नाम हैं—**परिपृच्छा** (Referendum), **पहल** (Initiative), **प्रत्यावर्तन या प्रत्याशी को वापस बुलाना** (Recall) **तथा जनमत संग्रह** (Plebiscible)। दूसरी ओर अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र में लोगों द्वारा चुने गये प्रतिनिधि सर्वोच्च शक्ति का इस्तेमाल करते हैं और सरकार चलाते हुए कानूनों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के लोकतन्त्र को प्रतिनिधि लोकतन्त्र भी कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—संसदीय और राष्ट्रपति के अधीन।
भारतीय संविधान में प्रतिनिधि संसदीय लोकतन्त्र की व्यवस्था है, जिसमें कार्यकारिणी अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए विधायिका के प्रति जवाबदेह है। वयस्क मताधिकार, सामयिक चुनाव, कानून की सर्वोच्चता, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता व भेदभाव का अभाव भारतीय राज्यव्यवस्था के लोकतान्त्रिक लक्षण के स्वरूप हैं।
संविधान की प्रस्तावना में लोकतान्त्रिक शब्द का इस्तेमाल बृहद रूप में किया है, जिसमें न केवल राजनीतिक लोकतन्त्र बल्कि सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र को भी शामिल किया गया है।

5. **भारत एक गणराज्य है**—भारत एक गणराज्य है। इससे तात्पर्य है कि **भारत का राष्ट्राध्यक्ष निर्वाचित होगा न कि वंशानुगत।** गणराज्य के सभी नागरिक समान होते हैं अत: वह किसी भी लोकपद हेतु निर्वाचित हो सकते हैं। किसी नागरिक को किसी भी लोक पद हेतु निर्वाचित होने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इंग्लैण्ड में लोकतन्त्र के साथ राजतन्त्र को अपनाया गया है न कि गणतन्त्र को।
संविधान की प्रस्तावना द्वारा अपने नागरिकों को अधोलिखित **न्याय, स्वतन्त्रता** तथा **समानता** सुनिश्चित कराने का संकल्प व्यक्त किया गया है। यथा—
न्याय (Justice)—तीन प्रकार के; यथा—सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक।
स्वतन्त्रता (Freedom)—विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की।
समानता (Equality)—प्रतिष्ठा एवं अवसर की।
प्रस्तावना द्वारा अपने सभी नागरिकों में ऐसी **बन्धुता** (Fraternity) बढ़ाने का संकल्प लिया गया है जो **व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता 'और अखण्डता' को सुनिश्चित करने वाली है। 'और अखण्डता' शब्द को 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है।** साथ ही उद्देशिका के अन्तिम भाग में संविधान को **अंगीकृत** करने तथा **अधिनियमित** करने की **तिथि** का वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार संविधान सभा ने संविधान को **26 नवम्बर, 1949** को अंगीकृत तथा अधिनियमित करके राष्ट्र को समर्पित किया था। ध्यातव्य है कि इसीलिए **26 नवम्बर** को **'विधि दिवस'** के रूप में मनाया जाता है।
भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जिन उद्देश्यों एवं आदर्शों को अन्तर्विष्ट किया गया है उनकी व्याख्या **मूल अधिकारों, राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों एवं मौलिक कर्त्तव्यों** के अध्यायों में की गयी है। हमारे संविधान निर्माता एक ऐसे **'कल्याणकारी राज्य'** (Welfare State) की स्थापना करना चाहते थे जो **'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'** पर आधारित हो।
इस प्रकार संविधान की प्रस्तावना उसका अभिन्न अंग है। यह महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है। इसमें शासन के उद्देश्यों का उल्लेख है। इसका उपयोग संविधान के अस्पष्ट उपबन्धों के निर्वचन में किया जा सकता है। किन्तु यह संविधान के स्पष्ट प्रावधानों को रद्द (Override) नहीं कर सकती है और न ही न्यायालय द्वारा प्रवर्तित करायी जा सकेगी। इसका संशोधन किया जा सकता है। किन्तु उस भाग का नहीं जो संविधान का आधारभूत ढाँचा (Basic Features) है।
डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने भारतीय संविधान की विशेषता का वर्णन करते हुआ कहा है कि "मैं महसूस करता हूँ कि भारतीय संविधान व्यावहारिक (Workable Constitution) है, इसमें परिवर्तन क्षमता है और इसमें शान्तिकाल तथा युद्धकाल में देश की एकता को बनाये रखने की भी सामर्थ्य है। वास्तव में, मैं यह कहना चाहूँगा कि यदि नवीन संविधान के अन्तर्गत स्थिति खराब होती है तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब है, वरन् हमें यह कहना होगा कि मनुष्य ही खराब है।"

प्र.3. भारत के संविधान के प्रमुख स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर संविधान निर्माण के समय संविधान सभा ने लगभग 60 देशों के संविधान का अध्ययन किया था और उनकी अच्छी बातों को, जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल थीं, नि:संकोच ग्रहण किया। वैसे भारतीय संविधान पर सर्वाधिक प्रभाव भारत शासन अधिनियम 1935 का पड़ा है।

जिन स्त्रोतों से भारतीय संविधान में उपबन्ध लिये गये हैं उनको संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है—

भारतीय शासन अधिनियम, 1935 (Indian Governance Act 1935)

1. संघीय व्यवस्था, 2. राज्यपाल का कार्यालय, 3. न्यायपालिका का ढाँचा, 4. आपातकालीन उपबन्ध, 5. लोक सेवा आयोग, 6. शक्तियों के वितरण की तीन सूचियाँ।

ब्रिटेन का संविधान (British Constitution)

1. संसदीय व्यवस्था, 2. मन्त्रिमण्डल प्रणाली, 3. विधायी प्रक्रिया, 4. राज्याध्यक्ष का प्रतीकात्मक या नाममात्र का महत्त्व, 5. एकल नागरिकता, 6. परमाधिकार रिटें, 7. द्विसदनवाद, 8. संसदीय विशेषाधिकार।

अमेरिका का संविधान (American Constitution)

1. मूल अधिकार, 2. न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, 3. न्यायिक पुनरीक्षण या पुनर्विलोकन का सिद्धान्त, 4. सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के पद से हटाया जाना और राष्ट्रपति पर महाभियोग, 5. उपराष्ट्रपति का पद।

आयरलैंड का संविधान (Ireland's Constitution)

1. राज्यसभा के लिए सदस्यों का नामांकन, 2. राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्त, 3. राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति।

कनाडा का संविधान (Canada's Constitution)

1. केन्द्र द्वारा राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति, 2. सशक्त केन्द्र के साथ संघीय व्यवस्था, 3. उच्चतम न्यायालय का परामर्शी न्याय-निर्णयन, 4. अवशिष्ट शक्तियों का केन्द्र में निहित होना।

फ्रांस का संविधान (French Constitution)

1. गणतन्त्रात्मक ढाँचा, 2. स्वतन्त्रता समता और बन्धुता के आदर्श।

ऑस्ट्रेलिया का संविधान (Australia's Constitution)

1. समवर्ती सूची, 2. संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक, 3. व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता।

जर्मनी का संविधान (Germany's Constitution)

1. आपातकाल के समय मूल अधिकारों का स्थगन

दक्षिणी अफ्रीका का संविधान (South Africa's Constitution)

1. राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन, 2. संविधान में संशोधन की प्रक्रिया।

सोवियत संघ का संविधान (USSR's Constitution)

1. प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का आदर्श, 2. मौलिक कर्त्तव्य।

जापान का संविधान (Japan's Constitution)

1. विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया, 2. अनुच्छेद-21 में वर्णित विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया।

प्र.4. समानता से क्या आशय है? समानता के अन्तर्गत कौन-सी बातें आती हैं? समानता के विविध रूपों का विवेचन कीजिए।

उत्तर

समानता (Equality)

समानता से आशय है कि सभी व्यक्तियों को अपने विकास के लिए समान सुअवसर प्राप्त हों। जन्म, सम्पत्ति, जाति, धर्म, रंग आदि के आधार पर जो सामाजिक जीवन के कृत्रिम आधार हैं। राज्य सभी नागरिकों को किसी प्रकार के भेदभाव के बिना उसकी बुद्धि और व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए समुचित अवसर प्रदान करे। आकांक्षा और योग्यता के रहते किसी व्यक्ति के विकास में बाधा नहीं होनी चाहिए।

समानता के अन्तर्गत आने वाले मौलिक तथ्य निम्नलिखित हैं—

प्रथम, किसी नागरिक, समुदाय, वर्ग या जाति के विरुद्ध किसी प्रकार की वैधिक अनर्हता (disqualification) नहीं रखनी चाहिए।

द्वितीय, सभी को उन्नति और विकास के अवसर दिये जाएँ।

तृतीय, सभी को शिक्षा, आवास, भोजन और प्राथमिक सुविधाओं की प्राप्ति का पूरा-पूरा हक हो। समानता की व्याख्या करते हुए **लॉस्की** ने कहा है—"समानता का पहला अर्थ है कि समाज में कोई विशेष हित वाला न हो, दूसरा प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति के समान अवसर प्राप्त हों।

समानता के रूप अथवा प्रकार (Forms of Equality and Types)

समानता के विभिन्न रूपों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

1. **सामाजिक समानता**—सामाजिक समानता का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में समान अधिकार प्राप्त हों और सबको समान सुविधाएँ मिलें। जिस समाज में जन्म, जाति, धर्म, लिंग इत्यादि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता, वहाँ सामाजिक समानता होती है। **संयुक्त राष्ट्र संघ** के द्वारा जो मानव-अधिकारों की घोषणा की गयी है, उसमें सामाजिक समानता पर विशेष बल दिया गया है।
2. **प्राकृतिक समानता—प्लेटो** के अनुसार, "प्राकृतिक समानता से आशय है कि सब मनुष्य जन्म से समान होते हैं। स्वाभाविक रूप से सभी व्यक्ति समान हैं, हम सबका निर्माण एक ही विश्वकर्मा ने एक ही मिट्टी से किया है। हम चाहे अपने को कितना ही धोखा दें, ईश्वर को निर्धन, किसान और शक्तिशाली राजकुमार सभी समान रूप से प्रिय हैं।"
   आधुनिक युग में प्राकृतिक समानता को कल्पनामात्र माना जाता है। **कोल** के अनुसार, "मनुष्य शारीरिक बल, पराक्रम, मानसिक योग्यता, सृजनात्मक शक्ति, समाज-सेवा की भावना और सम्भवत: सबसे अधिक कल्पना-शक्ति में एक-दूसरे से मूलत: भिन्न हैं।" संक्षेप में, वर्तमान युग में प्राकृतिक समानता का आशय यह है कि प्राकृतिक रूप से नैतिक आधार पर ही सभी व्यक्ति समान हैं तथा समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की असमानताएँ कृत्रिम हैं।
3. **राजनीतिक समानता**—जब राज्य के सभी नागरिकों को शासन में भाग लेने का समान अधिकार प्राप्त हो तो वहाँ के लोगों को राजनीतिक समानता प्राप्त रहती है। राजनीतिक समानता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को मत देने, निर्वाचन में खड़े होने तथा सरकारी नौकरी प्राप्त करने का समान अधिकार होता है। उनके साथ जाति, धर्म या अन्य किसी आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। राजनीतिक समानता लोकतन्त्र की आधारशिला होती है।
4. **नागरिक या कानूनी समानता**—नागरिक समानता का अर्थ नागरिकता के समान अधिकारों से होता है। नागरिक समानता के लिए यह आवश्यक है कि सब नागरिकों के मूलाधिकार सुरक्षित हों तथा सभी नागरिकों को समान रूप से कानून का संरक्षण प्राप्त हो। नागरिक समानता की पहली अनिवार्यता यह है कि समस्त नागरिक कानून के समक्ष समान हों। यदि कानून धन, पद, जाति अथवा अन्य किसी आधार पर भेद करता है तो उससे नागरिक समानता समाप्त हो जाती है और नागरिकों में असमानता का उदय होता है।
5. **आर्थिक समानता**—आर्थिक समानता का अभिप्राय यह है कि समाज में धन के वितरण की उचित व्यवस्था हो तथा मनुष्यों की आय में बहुत अधिक असमानता नहीं होनी चाहिए। **लॉस्की** के अनुसार, "आर्थिक समानता का अभिप्राय यह है कि राज्य में सभी को समान सुविधाएँ तथा अवसर प्राप्त हों।" इस सन्दर्भ में **लॉर्ड ब्राइस** का मत है कि "समाज से सम्पत्ति के सभी भेदभाव समाप्त कर दिये जाएँ तथा प्रत्येक स्त्री-पुरुष को भौतिक साधनों एवं सुविधाओं का समान भाग दिया जाए।"

   संक्षेप में, आर्थिक समानता से सम्बन्धित प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

   (i) समाज में सभी को समान रूप से व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता हो।

   (ii) प्रत्येक मनुष्य को इतना वेतन या पारिश्रमिक अवश्य प्राप्त हो कि वह अपनी न्यूनतम आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

   (iii) राज्य में उत्पादन और उपभोग के साधनों का वितरण और विभाजन इस प्रकार से हो कि आर्थिक शक्ति कुछ ही व्यक्तियों या वर्गों के हाथों में केन्द्रित न हो सके। **सी०ई०एम० जोड** के अनुसार, "स्वतन्त्रता का विचार, जो राजनीतिक विचारधारा में बहुत महत्त्वपूर्ण है, जब आर्थिक क्षेत्र में लागू किया गया तो उससे विनाशकारी परिणाम

निकले, जिसके फलस्वरूप समाजवादी और साम्यवादी विचारधाराओं का उदय हुआ, जो आर्थिक समानता पर विशेष बल देती हैं और जिनकी यह निश्चित धारणा है कि आर्थिक समानता के अभाव में वास्तविक राजनीतिक स्वतन्त्रता कदापि प्राप्त नहीं हो सकती।'' वास्तविकता यह है कि आर्थिक समानता सभी प्रकार की स्वतन्त्रताओं का आधार है और आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता केवल एक भ्रम है। **प्रो० जोड** के अनुसार, ''आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता एक भ्रम है।''

(iv) सुदृढ़ राजनीतिक एवं नागरिक समानता की कल्पना अपेक्षित आर्थिक समानता की पृष्ठभूमि पर ही की जा सकती है।

6. **धार्मिक समानता**—धार्मिक समानता का अर्थ यह है कि धार्मिक मामलों में राज्य तटस्थ हो और सब नागरिकों को अपनी इच्छा से धर्म मानने की स्वतन्त्रता हो। राज्य धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न करे। प्राचीन और मध्यकाल में इस प्रकार की धार्मिक समानता का अभाव था, परन्तु आज धर्म और राजनीति एक-दूसरे से अलग हो गये हैं और सामान्यत: राज्य नागरिकों के धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं करता।
7. **राष्ट्रीय समानता**—प्रत्येक राष्ट्र समान है, चाहे कोई राष्ट्र छोटा हो या बड़ा। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र को विकास करने का समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए।
8. **नैतिक समानता**—इस समानता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने चरित्र का विकास करने के लिए अन्य व्यक्तियों के समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए।
9. **शैक्षिक एवं सांस्कृतिक समानता**—शैक्षिक समानता का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने तथा अन्य योग्यताएँ विकसित करने का समान अवसर मिलना चाहिए और शिक्षा के क्षेत्र में जाति, धर्म, वर्ण और लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। समानता का तात्पर्य यह है कि सांस्कृतिक दृष्टि से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक सभी वर्गों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति बनाये रखने का अधिकार होना चाहिए। इसका महत्त्व इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि इसे भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के अन्तर्गत रखा जाता है।

प्र.5. 'अवसर की समानता' का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

अवसर की समानता
(Equality of Opportunity)

अवसर की समानता का अर्थ है—उन सभी अवरोधों को दूर करना जो व्यक्तिगत आत्म-विकास में बाधा डालते हैं। अर्थात पेशे या व्यवसाय प्रतिभावान व्यक्ति के लिए सदैव खुले होने चाहिए और प्रगति योग्यताओं पर आधारित होनी चाहिए। आर्थिक सामर्थ्य या स्थिति, पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक पृष्ठभूमि व ऐसे ही अन्य कारकों के हस्तक्षेप से मुक्त होनी चाहिए।

1. **सार्थक जीवन का अवसर प्रदान करना**—समानता पर उदारवादी विचार अवसर की समानता पर आधारित है। यह पक्षपोषण, समानता सम्बन्धी किसी भी यथेष्ट धारणा के विरुद्ध है; क्योंकि ये वह अवसर हैं जो असमान परिणामों की ओर ले जाते हैं। ऐसी दशा में यह सिद्धान्त परिणामों से असम्बद्ध है और केवल प्रक्रिया में रुचि रखता है। यह पूरी तरह से इस उदारवादी विचार को कायम रखने के साथ है कि व्यक्ति समाज की बुनियादी इकाई है और समाज को अवश्य ही उनके लिए यह सम्भव बनाना होगा कि वे अपने निजी हितों को सिद्ध कर पाये।

   एक समतावादी समाज कुछ लोगों को अपनी क्षमताएँ विकसित करने हेतु वास्तविक अवसर प्रदान करने से वंचित नहीं करेगा। इस अवसर का निष्कपट समतावादी प्रयोग एक सार्थक जीवन की ओर प्रवृत्त करेगा। यह सुनिश्चित करना कठिन है कि प्रत्येक व्यक्ति एक सार्थक जीवन व्यतीत करे, समतावादी ऐसी परिस्थितियों की व्याख्या इस अर्थ में करते हैं जो सभी व्यक्तियों को सार्थक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करें।
2. **तर्कसंगत व्यवस्था**—अवसर की समानता को प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए पेशे या व्यवसाय खुले रखना, निष्पक्ष समान अवसर उपलब्ध कराना और सकारात्मक-भेदभाव सिद्धान्त में बदलाव के माध्यम से संस्थापित किया जाता है। ये सब इस प्रकार काम करते हैं कि असमानता की व्यवस्था तर्कसंगत और स्वीकार्य लगे। निहित धारणा यह है कि जब से प्रतिस्पर्धा निष्पक्ष हुई है, लाभ स्वत: आलोचना से परे हो गया है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार की व्यवस्था ऐसे लोगों को जन्म देगी जो केवल अपनी प्रतिभाओं एवं वैयक्तिक सहजगुणों पर ध्यान देंगे। यह बात उन्हें अपने लोगों के साथ किसी भी सामुदायिक अनुभूति से वंचित करती है क्योंकि वे केवल प्रतिस्पर्धा की भाषा में ही सोच सकते हैं। शायद, यह केवल एक ऐसे समुदाय को जन्म दे सकती है जो एक ओर तो सफल व्यक्तियों का समुदाय होगा और दूसरी ओर

असफल व्यक्तियों का ऐसा समुदाय जो अपनी तथाकथित विफलता के लिए स्वयं को ही दोष देगा। अवसर की समानता के साथ एक और समस्या यह है कि वह एक पीढ़ी व दूसरी पीढ़ी की सफलताओं व विफलताओं के बीच एक बनावटी वियोजन उत्पन्न करने का प्रयास करती है।

3. **उच्च आदर्श पर आधारित**—अवसर की समानता एक ऐसी व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा करने का समान अवसर प्रदान करती है जो अनुक्रम आधारित हो। यदि ऐसा है तो यह तत्त्वत: कोई समतावादी सिद्धान्त प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार अवसर की समानता एक असमतावादी समाज की ओर संकेत करती है, यद्यपि वह योग्यता के उच्च आदर्श पर आधारित है। यह धारणा स्वयं को प्रकृति और परम्परा के बीच भिन्नता पर आधारित करती है। तर्क यह है कि वे भिन्नताएँ जो प्रतिभाओं, कौशलों, कठोर श्रम इत्यादि जैसे विभिन्न प्राकृतिक गुणों के आधार पर प्रकट होती हैं, नैतिक रूप से समर्थनीय हैं। तथापि, वे भिन्नताएँ जो परम्पराओं अथवा गरीबी, आश्रयहीनता जैसे सामाजिक रूप से बने भेदों से उत्पन्न होती हैं, समर्थनीय नहीं हैं। यद्यपि सत्यता यह है कि यह एक विशिष्ट सामाजिक पक्षपात है जो समाज में भेदों को स्पष्ट करने के लिए सुन्दरता अथवा बुद्धिमत्ता जैसी किसी प्राकृतिक भिन्नता को एक प्रासंगिक आधार बना देती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रकृति व परम्परा के बीच भेद इतना सुस्पष्ट नहीं है जैसा कि समतावादी कहते हैं।
4. **आकर्षक अवधारणा**—अवसर की समानता एक अत्यन्त आकर्षक धारणा है। अवसर की समानता यह अपेक्षा रखती है कि सभी व्यक्ति एक समान बिन्दु से जीवन शुरू करें। तथापि, यह जरूरी नहीं कि इसके परिणाम बिल्कुल भी समतावादी हों। यथार्थत: प्रत्येक व्यक्ति के समान रूप से प्रयास करने के बावजूद असमान परिणाम स्वीकार्य एवं वैध हैं। इस असमानता को भिन्न-भिन्न नैसर्गिक प्रतिभाओं, परिश्रम करने की क्षमता एवं भाग्य आदि शब्दों से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

समानता के अधिकारों के कुछ अपवाद—संविधान में यह भी उल्लेख किया गया है कि उपयुक्त समानता के अधिकारों का प्रयोग नागरिक पूर्ण निरपेक्षता के साथ नहीं कर सकते हैं। इन अधिकारों की भी कुछ सीमाएँ हैं। राज्य निम्नलिखित दशाओं में इन अधिकारों की उपेक्षा कर सकेगा—

1. राज्य सामाजिक तथा शिक्षा की दृष्टि से अनुसूचित जाति या पिछड़ी जातियों के लिए विशेष नियमों का निर्माण कर सकता है।
2. संविधान द्वारा राज्य को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि यदि वह चाहे तो किसी पद के लिए निवास तथा स्थान-सम्बन्धी योग्यता को निर्धारित कर सकता है।
3. समाज के कुछ वर्गों के लिए सरकारी सेवाओं में स्थान सुरक्षित किये जा सकते हैं।
4. राज्य महिलाओं तथा बच्चों की सुविधा के लिए विशेष नियमों का निर्माण कर सकता है और सार्वजनिक स्थानों में प्रविष्ट होने के लिए महिलाओं और दलित वर्ग के लिए विशेष सुविधाएँ देने हेतु कानून बना सकता है।

इस प्रकार समानता के मौलिक अधिकार का संवैधानिक तथा मानवीय दृष्टिकोण से व्यापक महत्त्व है। विशेषकर अस्पृश्यता का उन्मूलन संविधान की एक अमूल्य देन है।

प्र.6. भारतीय संविधान में वर्णित समानता के अधिकार का विस्तृत विवेचन कीजिए।

उत्तर

समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)
[Right to Equality (Para 14 to 18)]

समानता लोकतन्त्र का एक अभिन्न अंग है। समानता के अभाव में वास्तविक रूप से लोकतन्त्रात्मक शासन की स्थापना होनी असम्भव है। अत: भारतीय संविधान में समानता सम्बन्धी अधिकारों का विस्तृत उल्लेख है। समानता सम्बन्धी अधिकारों का वर्णन निम्नलिखित है—

1. **कानून के समक्ष समानता**—संविधान के 14वें अनुच्छेद के अनुसार भारतीय राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता अथवा कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। कानून के समक्ष समानता ब्रिटिश सामान्य विधि की देन है। यह विधि के शासन की अभिव्यक्ति है। यह समानता के नकारात्मक पक्ष को अभिव्यक्त करता है। कानून का समान संरक्षण वाक्य अमेरिका के संविधान से लिया गया है। इसका अर्थ समानों में समानता (Equality among equals) से लगाया जाता है। यह समानता के सकारात्मक पक्ष को अभिव्यक्त करता है। इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि यदि कानून 'कर' लगाने के सम्बन्ध में धनी व निर्धन में तथा सुविधाएँ प्रदान करने में स्त्रियों तथा पुरुषों में भेद करता है तो

इसे कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। कानून के समान संरक्षण के आधार पर राज्य व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेदभाव कर सकता है। विद्वानों ने इसे संरक्षणात्मक भेदभाव की संज्ञा प्रदान की है।

2. **धर्म, जाति, लिंग, जन्म-स्थान के भेदभाव का अन्त**—संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। इस अधिकार का अभिप्राय यह है कि केवल धर्म, जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा। कोई भी नागरिक इन आधारों पर (i) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, मनोरंजन के स्थानों या (ii) सरकार द्वारा स्थापित किये गये कुओं, तालाबों, सड़कों तथा सार्वजनिक स्थानों का प्रयोग करने से वंचित नहीं किया जा सकता अर्थात् प्रत्येक भारतीय नागरिक इन स्थानों का समान रूप से उपयोग कर सकता है।
3. **सरकारी सेवाओं के विषय में अवसर की समानता**—संविधान के अनुच्छेद 16 के अनुसार केवल धर्म, जाति, वर्ण आदि के आधार पर राज्य के अन्तर्गत किसी रोजगार, नियुक्ति और किसी उच्च पद को प्राप्त करने के सम्बन्ध में किसी नागरिक के साथ भेदभावपूर्ण नीति का प्रयोग नहीं किया जाएगा। इस अधिकार के अन्तर्गत भारत का प्रत्येक नागरिक राज्य का उच्च पद प्राप्त कर सकता है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।
4. **अस्पृश्यता का अन्त**—संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार, अस्पृश्यता का सदैव के लिए अन्त कर दिया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत किसी नागरिक को अस्पृश्यता के आधार पर किसी अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा। जो व्यक्ति ऐसा करने का प्रयत्न करेगा, राज्य की ओर से उसे दण्ड दिया जाएगा। इस अनुच्छेद के द्वारा अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध बनाया गया है। सार्वजनिक सेवा प्रदान करने के समय व्यक्ति अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को सेवा प्रदान करने से मना नहीं कर सकता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसको राज्य के द्वारा दण्डित किया जा सकता है।

   इसके साथ ही अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़ा वर्ग को उन्नति करने के लिए संविधान ने अनेक प्रकार को विशेष सुविधाएँ भी प्रदान की हैं। उदाहरण के लिए सरकारी सेवाओं एवं पदों के लिए इनके लिए स्थान सुरक्षित किये गये हैं। इन्हें नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करने की छूट दी गई है और सरकार की ओर से आर्थिक सहायता भी दी जाती है। संविधान में यह भी उल्लेख है कि इन प्रयत्नों को किसी न्यायालय द्वारा इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकेगा कि इसके अनुसार किसी वर्ग-विशेष को राज्य के द्वारा विशेष सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं। संविधान के अन्तर्गत आरक्षण की व्यवसथा को इस अनुच्छेद के आधार पर ही लागू किया जा सका है।
5. **उपाधियों का अन्त**—संविधान के अनुच्छेद 18 के अनुसार उपाधियाँ समानता के मार्ग में बाधक होती हैं तथा समाज में विषमता उत्पन्न करती हैं। इसलिए सेना तथा शिक्षा सम्बन्धी उपाधियों के अतिरिक्त अन्य सभी उपाधियों को समाप्त किया गया है, जो ब्रिटिश शासनकाल में प्रदान की जाती थीं। संविधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि कोई भी भारतीय किसी विदेशी राज्य से किसी भी प्रकार की कोई उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता है। किन्तु विदेशी, जो भारत सरकार के अधीन सेवा में हो, वह केवल राष्ट्रपति की अनुमति से ही किसी विदेशी राज्य की उपाधि ग्रहण कर सकता है। इस सम्बन्ध में **डॉ० अम्बेडकर** ने कहा है, "यह कोई भी अधिकार नहीं वरन् नागरिक बने रहने के लिए व्यक्ति पर लगाया गया एक कर्त्तव्य है।"

प्र.7. स्वतन्त्रता का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

***अथवा* स्वतन्त्रता से आप क्या समझते हैं? सकारात्मक तथा नकारात्मक स्वतन्त्रता की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।**

***अथवा* स्वतन्त्रता की परिभाषा देते हुए नागरिकों को प्राप्त विभिन्न स्वतन्त्रताओं का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर स्वतन्त्रता का शाब्दिक अर्थ—स्वतन्त्रता शब्द अंग्रेजी के 'लिबर्टी' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है और 'लिबर्टी' (Liberty) शब्द लैटिन भाषा के *'लिबर' (Liber)* शब्द से निकला है। *'लिबर'* का अर्थ है बन्धनों का न होना (absence of restraint) इस प्रकार व्युत्पत्ति की दृष्टि से स्वतन्त्रता का अर्थ बन्धनों सें मुक्ति है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को चाहे जो कुछ करने की स्वतन्त्रता हो, परन्तु इस प्रकार की स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है। यदि हम इस अर्थ को स्वीकार कर लें तो स्वतन्त्रता का अर्थ होगा, "कानून का अभाव किन्तु कानून के अभाव का अर्थ होता है, अराजकता न कि स्वतन्त्रता।" जैसा कि मैकनी नामक विद्वान ने लिखा है (Absolute freedom is dissolute liberty of wild ass) ***—(Mackechnie)***

स्वतन्त्रता का नकारात्मक अर्थ—कुछ लोगों का कहना है कि स्वतन्त्रता का अर्थ कार्य और विचार की उस अवस्था से है जिसमें हस्तक्षेप का सर्वथा अभाव हो परन्तु स्वतन्त्रता का यह अर्थ भी न्यायसंगत नहीं है। यदि हस्तक्षेप के अभाव को स्वतन्त्रता मान लिया जाये तो ऐसी दशा में प्रत्येक व्यक्ति मनमानी करेगा। ऐसी स्थिति हमें अराजकता और अव्यवस्था की ओर ले जायेगी।

स्वतन्त्रता का सकारात्मक अर्थ—'स्वतन्त्रता' का सच्चा अर्थ उपयुक्त काम करने की वह सुविधा है जो राजकीय कानूनों के अन्तर्गत सभी मनुष्यों को समान रूप में इस रीति से प्राप्त हो कि उसके मूल अधिकार सुरक्षित रहें और वह अपने व्यक्तित्व का अधिकतम विकास कर सके। स्वतन्त्रता मानव जीवन के सर्वोत्तम विकास की सुविधाओं का नाम है। यह सब प्रकार के प्रतिबन्धों का अभाव नहीं है, अपितु अनुचित के स्थान पर उचित प्रतिबन्धों की व्यवस्था है। दूसरे शब्दों में स्वतन्त्रता का आशय उस दशा से है जिसके बिना अधिकारों का उपयोग सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता उन कार्यों को करने का अधिकार है जिनके बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है।

स्वतन्त्रता की परिभाषाएँ
(Definitions of Freedom)

1. **हरबर्ट स्पेन्सर की परिभाषा**—"स्वतन्त्रता का अर्थ मनुष्य के उन कार्यों से है जिनको वह अपनी इच्छा से करना चाहता है परन्तु वे कार्य अन्य मनुष्यों की इच्छाओं एवं कार्यों में बन्धन न उत्पन्न करें।"
2. **मैकनी की परिभाषा**—"स्वतन्त्रता का अर्थ सब प्रकार के प्रतिबन्धों का अभाव नहीं, अपितु अनुचित के स्थान पर उचित प्रतिबन्धों की व्यवस्था है।"
3. **सीले की परिभाषा**—"स्वतन्त्रता अति शासन का विलोम है।"
4. **गैटेल की परिभाषा**—"नागरिक स्वतन्त्रता में उन अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों का समावेश होता है जिनको राज्य द्वारा अपने नागरिकों के लिए उत्पन्न किया जाता है और जिनकी वह रक्षा करता है।"
5. **बार्कर की परिभाषा**—"जिस प्रकार सुन्दरता कुरूपता की अनुपस्थिति नहीं है, उसी प्रकार स्वतन्त्रता प्रतिबन्धों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि अवसर की उपस्थिति है।"
6. **ह्वाइट की परिभाषा**—"स्वतन्त्रता केवल वह अधिकार है जिसे तुम उस समय तक नहीं प्राप्त कर सकते जब तक कि तुम इसे दूसरों को देने के इच्छुक न हो।"
7. **प्रो० हेरल्ड जे० लॉस्की की परिभाषा**—"स्वतन्त्रता का अर्थ ऐसे वातावरण को बनाये रखने से है, जिसमें मनुष्य को अपने पूर्ण विकास के अवसर प्राप्त होते हैं।"
8. **ग्रीन की परिभाषा**—"स्वतन्त्रता का तात्पर्य आनन्द प्राप्त करने की ऐसी सकारात्मक या विधेयपरक शक्ति से है जिसके द्वारा व्यक्ति उन सब कार्यों को कर सके जो कि करने योग्य हैं।"

स्वतन्त्रता की आवश्यकता एवं महत्त्व
(Need and Importance of Freedom)

स्वतन्त्रता मानव-जीवन की अमूल्य निधि है। **बर्न्स** का मत है, "स्वतन्त्रता न केवल सभ्य जीवन का आधार है, वरन् सभ्यता का विकास भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा स्थानीय स्वायत्त शासन पर निर्भर है।" इसी प्रकार **मैजिनी** ने लिखा है, "स्वतन्त्रता के अभाव में आप अपना कोई कर्त्तव्य पूरा नहीं कर सकते, अत: आपको यह अधिकार दिया जाता है कि जो भी शक्ति आपको इस अधिकार से वंचित करना चाहती हो तो उससे जैसे भी बने, अपनी स्वतन्त्रता छीन लेना आपका कर्त्तव्य है।" व्यक्तित्व के विकास के लिए स्वतन्त्रता परम आवश्यक है। बिना स्वतन्त्रता के विकास सम्भव ही नहीं है। अत: निम्नलिखित दृष्टियों से स्वतन्त्रता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

1. स्वतन्त्रता मानव-जीवन के लिए आवश्यक है।
2. स्वतन्त्रता व्यक्ति तथा सरकार (शासन) दोनों के लिए हितकर है।
3. स्वतन्त्रता सत्य की सुरक्षा करता है। **टालस्टाय** के शब्दों में, "स्वतन्त्रता के बिना सत्य अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता है।"
4. स्वतन्त्रता नवीन विचारों की खोज का मुख्य स्रोत है।
5. स्वतन्त्रता से ही सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा नैतिक शक्ति का विकास होता है।

स्वतन्त्रता के विविध रूप (या भेद)
(Different form of Freedom)

मानवीय आवश्यकताओं और क्रियाकलापों को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक विचारकों ने स्वतन्त्रता के निम्नलिखित रूप बताये हैं—

1. **नागरिक या सामाजिक स्वतन्त्रता**—समाज का सदस्य होने के नाते व्यक्ति जिस स्वतन्त्रता का उपभोग करता है उसे नागरिक या सामाजिक स्वतन्त्रता कहते हैं। व्यापक दृष्टि से नागरिक स्वतन्त्रता का आशय वैयक्तिक अधिकारों की सम्पूर्ण व्यवस्था से होता है, किन्तु सीमित अर्थ में इसका आशय व्यक्ति की उस स्वतन्त्रता से है जो राज्य के हस्तक्षेप से बाहर होती है। ऐसी स्वतन्त्रता के अन्तर्गत सामान्यत: निम्नलिखित स्वतन्त्रताएँ होती हैं—
(i) व्यक्तिगत शारीरिक स्वतन्त्रता, (ii) निजी सम्पत्ति प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने की स्वतन्त्रता, (iii) विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, (iv) पूजा करने की स्वतन्त्रता, (v) न्याय प्राप्त करने की स्वतन्त्रता।
2. **प्राकृतिक स्वतन्त्रता**—कतिपय राजनीतिक विचारकों की धारणा है कि स्वतन्त्रता प्राकृतिक होती है। वह प्रकृति की देन है। उनके अनुसार मनुष्य स्वभाव से ही स्वतन्त्र है। अनुबन्धवादी विचारक हॉब्स, लॉक एवं रूसो स्वतन्त्रता के इस स्वरूप के समर्थक थे, लेकिन प्राकृतिक स्वतन्त्रता का विचार कोरी कल्पना पर आधारित है क्योंकि मनुष्य कभी भी प्राकृतिक अवस्था में नहीं रहा। इसका दूसरा अर्थ मनुष्य की प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक शक्तियों एवं गुणों से लगाया जाता है। इस अर्थ के अनुसार प्राकृतिक स्वतन्त्रता वह है कि जो मनुष्य के इन स्वाभाविक गुणों के विकास के लिए अनिवार्य है।
3. **आर्थिक स्वतन्त्रता**—आर्थिक स्वतन्त्रता से अभिप्राय मनुष्य की उस स्थिति से है जिसमें उसे कानूनी रीति से अपने जीविकोपार्जन करने का अधिकार प्राप्त हो। इसका आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन का समुचित अवसर मिले, वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त धन अर्जित कर सके। आर्थिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत कार्य करने का अधिकार, उचित समय तक कार्य करने का अधिकार, उचित वेतन पाने का अधिकार, बेकारी में सहायता पाने का अधिकार, इत्यादि सम्मिलित हैं।
4. **राजनीतिक स्वतन्त्रता**—अपने देश के शासन में सक्रिय भाग लेने की स्वतन्त्रता को राजनीतिक स्वतन्त्रता कहते हैं, अत: यह लोकतन्त्रीय शासन में ही सम्भव होती है। राजनीतिक स्वतन्त्रता का विवेचन करते हुए **प्रो० लॉस्की** ने लिखा है—"मैं राज्य के मामले में खुलकर भाग ले सकता हूँ, मेरे उच्च पद पर पहुँचने में कोई रुकावट नहीं है जो सबके लिए न हो। मैं अपने विचारों को अकेले या दूसरों के साथ मिलकर व्यक्त कर सकता हूँ।"
5. **धार्मिक स्वतन्त्रता**—जब राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा का धर्म अपनाने एवं उसका पालन करने की स्वतन्त्रता होती है तो उस राज्य के नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। राज्य धार्मिक मामलों में तटस्थ रहता है। आजकल के युग में प्राय: प्रत्येक सभ्य राष्ट्र अपने नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है।
6. **राष्ट्रीय स्वतन्त्रता**—व्यक्ति के लिए नागरिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता का जो महत्त्व है, वह महत्त्व राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र का यह अधिकार है कि वह अन्य किसी देश की पराधीनता से मुक्त हो।
7. **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता**—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्ति को इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता देना है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि वह अपने जीवन को अपनी इच्छानुसार चलाये और उसी जीवन पद्धति का अनुसरण करते हुए वह अपने व्यक्तित्व का पूरा विकास करे। इसलिए राज्य को चाहिए कि वह ऐसी व्यवस्था करे जिससे प्रत्येक व्यक्ति को विशेष रीति से रहने, धर्म-पालन करने, वस्त्र धारण करने की सुविधा मिले। **जॉन स्टुअर्ट मिल** व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक था परन्तु मिल का कहना था कि व्यक्ति को अनियन्त्रित वैयक्तिक स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिए। बट्रेण्ड रसल भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक हैं।
8. **नैतिक स्वतन्त्रता**—व्यक्ति को उसकी अन्तरात्मा के अनुसार सदाचरण व्यवहार करने की स्वतन्त्रता को नैतिक स्वतन्त्रता कहते हैं। नैतिक स्वतन्त्रता व्यक्ति के समुचित विकास में तो सहायक होती ही है, उसका प्रभाव सामाजिक और राष्ट्रीय विकास पर भी पड़ता है। काण्ट, हीगल, ब्रोसांके इत्यादि सभी विद्वानों ने इस प्रकार की स्वतन्त्रता का समर्थन किया है।

प्र.8. भारतीय संविधान में प्रदत्त स्वतन्त्रता के अधिकार की विवेचना कीजिए।

उत्तर

स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22 तक)
[(Right to Freedom (Para 19 to 22)]

स्वतन्त्रता के अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास असम्भव है। इसीलिए भारतीय संविधान ने नागरिकों को स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है।

1. **अनुच्छेद 19** के अन्तर्गत नागरिकों को निम्नलिखित स्वतन्त्रताएँ दी गई हैं—
   - (i) **भाषण तथा विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता**—इस स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक नागरिक को भाषण द्वारा, प्रेस द्वारा अथवा किसी अन्य माध्यम से विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता है। इस अधिकार द्वारा प्रत्येक नागरिक सरकार की आलोचना तथा प्रत्यालोचना कर सकता है। इस स्वतन्त्रता का बहुत अधिक महत्त्व है, क्योंकि इसके द्वारा जागरूक तथा स्वस्थ जनमत का निर्माण होता है।
   - (ii) **शान्तिपूर्ण तथा शस्त्रविहीन होकर सभा करने की स्वतन्त्रता**—इस स्वतन्त्रता का अर्थ है कि प्रत्येक नागरिक शस्त्रविहीन होकर शान्तिपूर्वक सभा का आयोजन कर सकता है। इसके अनुसार नागरिक शान्तिपूर्वक जुलूस आदि भी निकाल सकते हैं परन्तु यदि जूलुस से शान्ति भंग होने की आशंका हो जाए तो राज्य उस जुलूस या सभा को प्रतिबन्धित कर सकता है।
   - (iii) **संस्था तथा समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता**—इस अधिकार द्वारा प्रत्येक नागरिक को संस्था तथा समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। इस अधिकार के आधार पर ही व्यक्ति राजनीतिक दलों तथा दबाव समूहों का निर्माण कर सकता है। राज्य सार्वजनिक व्यवस्था की दृष्टि से इस अधिकार पर भी प्रतिबन्ध लगा सकता है।
   - (iv) **आवागमन की स्वतन्त्रता**—इस अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को सम्पूर्ण देश में भ्रमण करने की स्वतन्त्रता है। वह किसी भी समय भारत के किसी भी राज्य में आ-जा सकता है और उसे किसी भी प्रकार का पासपोर्ट प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है।
   - (v) **निवास की स्वतन्त्रता**—इस अधिकार द्वारा प्रत्येक नागरिक अपनी इच्छानुसार भारत संघ के किसी भी राज्य में स्वतन्त्रतापूर्वक निवास कर सकता है।
   - (vi) **आजीविका उपार्जन करने की स्वतन्त्रता**—भारत का प्रत्येक नागरिक अपनी परिस्थिति तथा योग्यता के अनुसार कोई भी व्यवसाय करने के लिए राज्य किसी भी नागरिक को वैधानिक रूप से आजीविका उपार्जित करने से नहीं रोक सकता। यद्यपि इस अधिकार पर राज्य ने सार्वजनिक व्यवस्था के लिए कुछ प्रतिबन्ध लगाये हैं।
2. **अपराधों के विषय में स्पष्टीकरण देने की स्वतन्त्रता**—संविधान के 20वें अनुच्छेद के अनुसार किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दोषसिद्ध नहीं किया जायेगा जब तक कि उसने कोई ऐसा कार्य नहीं किया है जो उस कार्य को करते समय लागू किसी विधि के अधीन अपराध है तथा किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार अभियोजित और दण्डित नहीं किया जाएगा। किसी नागरिक को अपने ही विरुद्ध गवाही देने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। उसे किसी कथित अपराध के लिए दण्डित करने से पूर्व न्यायालय में अपना स्पष्टीकरण देने की स्वतन्त्रता होगी।
3. **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा जीवन की सुरक्षा**—संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी व्यक्ति को उसके प्राण तथा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। अब आपातकाल में भी जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार को समाप्त अथवा सीमित नहीं किया जा सकता है।
4. **बन्दीकरण और निरोध में संरक्षण की स्वतन्त्रता**—अनुच्छेद 22 किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी एवं निरोध से संरक्षण प्रदान करता है। कोई नागरिक उस समय तक बन्दी नहीं बनाया जा सकता, जब तक कि उसको बन्दीकरण के कारण अवगत नहीं कराये जाते। प्रत्येक ऐसे नागरिक को बन्दीकरण के 24 घण्टों के अन्दर किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष अवश्य प्रस्तुत किया जायेगा और उसको अपनी इच्छानुसार वकील की सहायता लेने, उससे परामर्श लेने तथा अपनी पैरवी करने का अधिकार प्राप्त होगा। यह उपबन्ध उन नागरिकों पर लागू नहीं होगा, जो बन्दीकरण के समय भारत के विदेशी शत्रु हैं या जो 'निवारक निरोध' (Preventive Detention) के कारण नजरबन्द किये गये हैं। निवारक निरोध का तात्पर्य वास्तव में किसी प्रकार का अपराध किये जाने से पूर्व तथा बिना किसी प्रकार की न्यायिक प्रक्रिया के ही नजरबन्दी है। निवारक निरोध का उद्देश्य व्यक्ति को अपराध के लिए दण्ड देना नहीं, वरन् उसे अपराध करने से रोकना है। निवारक

निरोध के अन्तर्गत संसद के द्वारा 1950 ई० में निवारक नजरबन्दी अधिनियम पारित किया गया। यह अधिनियम 31 दिसम्बर, 1969 तक चला। जून 1971 में आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम (मीसा) पारित किया गया। अप्रैल 1979 में यह स्वत: ही समाप्त हो गया। सितम्बर 1980 में सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम पारित किया। इसके अन्तर्गत नजरबन्दी की तिथि से 10 दिनों के अन्दर नजरबन्दी के कारण बताये जाने का प्रावधान है। निरुद्ध व्यक्ति निरोध की विधि मान्यता को न्यायालय में चुनौती दे सकता है। इसके अतिरिक्त आवश्यक सेवा अनुरक्षण (ऐस्मा), काला-बाजारी पर रोक, आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सम्बन्धी अधिनियम तथा विघटनकारी विध्वंसक अधिनियम (टाडा) जैसे विभिन्न निवारक नजरबन्दी अधिनियम पारित हुए।

भारत सरकार ने मई 1995 को टाडा को समाप्त कर दिया तथा इसके पश्चात् आतंकवादी गतिविधियों से निपटने के लिए 'पोटा' का निर्माण किया गया। परन्तु 2004 में संप्रग सरकार ने पोटा को समाप्त कर दिया।

स्वतन्त्रता के अधिकारों पर कुछ प्रतिबन्ध (Some Restrictions on the Rights to Freedom)

संविधान ने इन अधिकारों के प्रयोग करने पर भी कुछ प्रतिबन्ध लगाये हैं। इन प्रतिबन्धों के कारण स्वतन्त्रता के अधिकार अत्यधिक सीमित हो गये हैं। भाषणों और विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के अधिकार पर राज्य की ओर से 'अपमान लेख', 'अपमान वचन', 'मान-हानि', 'न्यायालय का अपमान', 'अशिष्टता' आदि होने पर 'न्यायोचित प्रतिबन्ध' लगाये जा सकते हैं।

सन् 1951 में राज्य को इस सम्बन्ध में अधिकार देने के उद्देश्य से संविधान में संशोधन किया गया है। इसके अनुसार राज्य की सुरक्षा, विदेशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, सार्वजनिक व्यवस्था, अपराध करने हेतु प्रेरित करने, नैतिकता व शिष्टता के विरुद्ध कार्य करने, न्यायालय के अपमान, अपमान-लेख, अपमान-वचन और मान-हानि से रोकने के लिए उपयुक्त प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि भाषणों तथा विचारों की अभिव्यक्ति को रोकने के लिए राज्य की ओर से लगाये जाने वाले प्रतिबन्धों का न्यायोचित होना आवश्यक है। इसका निर्णय करने का अधिकार भारत के सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है। यदि वह किसी प्रतिबन्ध को अनुचित समझता है, तो उसका अन्त कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति के भ्रमण करने से किसी बीमारी के फैलने अथवा साम्प्रदयिक हिंसा भड़कने की सम्भावना उत्पन्न हो सकती है, तब उस व्यक्ति के भ्रमण पर भी प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। संविधान सभा में इन प्रतिबन्धों की कड़ी आलोचना की गई।

प्र.9. स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर

स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करने की विधियाँ (Methods to Ensure Independence)

नागरिकों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए निम्नलिखित विधियों को अपनाया गया है—

1. **लोक-हितकारी कानूनों का निर्माण**—कभी-कभी सरकार वर्ग-विशेष के हितों का ध्यान रखकर कानून का निर्माण करती है। उस परिस्थिति में सरकार द्वारा निर्मित कानून आलोचना का विषय बन जाते हैं और समाज में असन्तोष व्याप्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करने से वंचित हो जाते हैं। इस विषम परिस्थिति पर नियन्त्रण करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार जो भी कानून बनाये वह लोकहित का ध्यान रखकर ही बनाये। लोकहित के आधार पर निर्मित कानून समाज में समानता व स्वतन्त्रता की सुरक्षा करते हैं।
2. **राज्य द्वारा कार्यों पर नियन्त्रण**—यदि नागरिकों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा करनी है तो राज्य द्वारा नागरिकों के कार्यों पर नियन्त्रण किया जाना चाहिए। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह व्यक्ति को ऐसे कार्यों को करने से रोक दे जो दूसरों के हितों का उल्लंघन करते हैं।
3. **अधिकारों की समानता**—अधिकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता के द्योतक हैं। जिस समाज में व्यक्तियों को सामाजिक व राजनीतिक अधिकार प्रदान नहीं किये जाते हैं, उस समाज के नागरिक स्वतन्त्रता का वास्तविक उपभोग नहीं कर पाते हैं। यदि अधिकारों में समानता नहीं होगी तो स्वतन्त्रता का उपभोग नागरिक नहीं कर सकेंगे।
4. **विशेषाधिकार-विहीन समाज की स्थापना**—स्वतन्त्रता की सुरक्षा उसी समय सम्भव है जबकि समाज में कोई वर्ग अथवा समूह विशेषाधिकारों से युक्त नहीं होता है तथा सभी व्यक्ति एक-दूसरे के विचारों का आदर तथा सम्मान करते हैं। व्यक्तियों में ऊँच-नीच की भावना स्वतन्त्रता का हनन करती है। यदि समाज में कोई विशेषाधिकारयुक्त वर्ग होता है तो वह अन्य वर्गों के विकास में बाधक बन जाता है तथा दूसरे वर्ग अपनी सामाजिक व राजनीतिक स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं कर सकते हैं।

5. **नागरिक चेतना**—नागरिक अपनी स्वतन्त्रता समाप्त कर सकते हैं, यदि वे उसके प्रति जागरूक न रहें। शिथिलता व उदासीनता आने पर नागरिक अपनी स्वतन्त्रता समाप्त कर देते हैं इसलिए स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए यह अनिवार्य है कि नागरिक शासन की निरंकुशता के प्रति जागरूक रहें।
6. **स्थानीय स्वशासन की स्थापना**—नागरिकों के राजनीतिक ज्ञान की वृद्धि उसी समय सम्भव है जबकि नागरिक स्वतन्त्र रूप से शासन के कार्यों में भाग लें और शासन-सम्बन्धी नीतियों से परिचित हों। इस प्रकार की व्यवस्था करने का एकमात्र उपाय शक्तियों का विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वशासन की स्थापना करना है।
7. **निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्यायालय**—न्याय नागरिकों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा की प्रथम दशा है। यदि नागरिकों को निष्पक्ष व स्वतन्त्र न्याय मिलने में बाधा आएगी तो वे निराश हो जाएँगे, उनके व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाएगा अतएव व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए यह आवश्यक है कि स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना की जाए।
8. **लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली की स्थापना**—लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली में नागरिकों को भाषण, भ्रमण तथा विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता मिलती है, अतएव लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली की स्थापना करके हम नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकते हैं।
9. **मौलिक अधिकारों को मान्यता**—विभिन्न प्रकार के अधिकारों के उपभोग की सुविधा का होना ही स्वतन्त्रता मानी जाती है, अतएव विद्वानों का मत है कि मौलिक अधिकारों को संवैधानिक मान्यता होनी चाहिए। मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करने वालों को न्यायालय द्वारा दण्डित किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि मौलिक अधिकारों को संवैधानिक मान्यता प्रदान की जाती है तो स्वतन्त्रता की सुरक्षा स्वयं ही हो जाएगी।
10. **आर्थिक असमानता का अन्त**— स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आर्थिक असमानता का अन्त करके आर्थिक समानता की व्यवस्था करनी चाहिए।
11. **संवैधानिक उपचारों की व्यवस्था**—यदि राज्य या कोई व्यक्ति नागरिक के अधिकारों का अतिक्रमण करे तो न्यायालय को हस्तक्षेप करके नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा करनी चाहिए। इसी को संवैधानिक उपचार भी कहा जाता है।
12. **प्रचार के साधनों की प्रचुरता**—स्वतन्त्रता के प्रति नागरिकों को जागरूक बनाये रखने के लिए देश में प्रचार तथा प्रसार के साधनों की प्रचुरता होना आवश्यक है। इनके माध्यम से नागरिकों को राजनीतिक क्षेत्र में जाग्रत रखा जा सकता है। स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष प्रेस के माध्यम से नागरिकों में स्वतन्त्रता के प्रति चेतना अथवा जागरूकता उत्पन्न की जा सकती है।
13. **राजनीतिक दलों का सुदृढ़ संगठन**—राजनीतिक दल शासन की नीति के आलोचक होते हैं। यदि सरकार नागरिकों की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करती है तो राजनीतिक दल सरकार के विरुद्ध जन-क्रान्ति कराकर शासन सत्ता को परिवर्तित करते हैं। इस सम्बन्ध में **लॉस्की** का कथन है, "राजनीतिक दल देश में सीजरशाही से हमारी रक्षा करने के सर्वोत्तम साधन हैं।"

प्र.10. विश्वास की स्वतन्त्रता अथवा धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार की विवेचना कीजिए।

उत्तर भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसन्द के धर्म एवं विश्वासों का पालन करने की स्वतन्त्रता है। इस स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र का प्रतीक माना जाता है। दुनिया के अनेक देशों के शासकों और राजाओं ने अपने-अपने देश की जनता को धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं दिया। शासकों ने अलग धर्म को मानने वाले लोगों को या तो मार डाला गया या विवश किया गया कि वे शासकों द्वारा मान्य धर्म को स्वीकार करें। अत: लोकतन्त्र में अपनी इच्छानुसार धर्म पालन करने की स्वतन्त्रता को सदैव एक मूलभूत सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया है।

विश्वास और प्रार्थना की स्वतन्त्रता
(Freedom of Beliefs and Prayer)

भारतीय संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने और उसका पालन करने का अधिकार दिया है। धार्मिक स्वतन्त्रता में अन्त:करण की स्वतन्त्रता भी समाहित है। इसका अर्थ है कि कोई व्यक्ति किसी भी धर्म को चुन सकता है या यह निर्णय भी ले सकता है कि वह किसी भी धर्म का पालन नहीं करेगा। प्रत्येक व्यक्ति को अन्त:करण की स्वतन्त्रता और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने का अधिकार प्रदान करता है। लेकिन धार्मिक स्वतन्त्रता पर कुछ प्रतिबन्ध भी हैं। लोक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के आधार पर सरकार धार्मिक स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार असीमित नहीं है। कुछ सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है।

उदाहरण के रूप में सरकार ने सती प्रथा, बहुविवाह और मानव-बलि जैसी कुप्रथाओं पर प्रतिबन्ध के लिए अनेक कदम उठाये। ऐसे प्रतिबन्धों को धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता।

संविधान ने सभी को अपने धर्म का प्रचार करने की स्वतन्त्रता दी है। इसमें लोगों को एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन के लिए मनाने का अधिकार भी शामिल है। किसी व्यक्ति को लालच या दबाव के अधीन अपना धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

सभी धर्मों की समानता
(Equality of All Religions)

भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है। भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, न्यायाधीश या अन्य किसी सार्वजनिक पद पर कार्य के लिए हमें किसी धर्म-विशेष का सदस्य होना जरूरी नहीं है। 'समानता के अधिकार' के अन्तर्गत भी हमने देखा कि सभी नागरिकों को इस बात की गारण्टी दी गई है कि सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के सम्बन्ध में सरकार धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी। राज्य द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं में न तो किसी धर्म का प्रचार किया जाएगा, न ही कोई धार्मिक शिक्षा दी जाएगी और न ही उसमें प्रवेश के लिए किसी धर्म को वरीयता दी जाएगी। इन प्रावधानों से स्पष्ट होता है कि भारत में सभी धर्मों की समानता पर बल दिया गया है।

प्र.11. स्वतन्त्रता तथा कानून में क्या सम्बन्ध है? संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

अथवा **"कानून का पालन स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

उत्तर

कानून और स्वतन्त्रता का सम्बन्ध
(Relationship between Low and Liberty)

स्वतन्त्रता और कानून के सम्बन्धों के बारे में व्यक्तिवादी विचारकों की धारणा है कि कानून स्वतन्त्रता का विरोधी है। स्वतन्त्रता से उनका अर्थ उस स्थिति से है जिसमें व्यक्ति को चाहे जो करने की छूट हो, कार्यों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न हो, इस प्रकार की विचारधारा 18वीं और 19वीं शताब्दी में प्रचलित रही। 20वीं शताब्दी में यह विचारधारा लुप्त हो गई।

दूसरी ओर आदर्शवादी विचारकों की यह धारणा थी कि व्यक्तियों की स्वतन्त्रता कानून पालन में ही निहित होती है।

कानून और स्वतन्त्रता विरोधी नहीं हैं—कानून और स्वतन्त्रता एक-दूसरे के पूरक हैं। यह कथन निम्नलिखित विवरण से सिद्ध होता है—

1. **कानून और स्वतन्त्रता एक-दूसरे के पूरक हैं**—कानून और स्वतन्त्रता एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि मानव सभ्यता के विकास की कथा पर एक दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि कानून के निर्माण के मूल में मानव की स्वतन्त्रता की भावना रही है। मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए कानूनों का निर्माण करता है। वस्तुत: कानून के बिना स्वतन्त्रता की कल्पना नहीं की जा सकती और कानून तथा स्वतन्त्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे एक-दूसरे पर अवलम्बित हैं—"Law and liberty are thus inter-dependent and complementary to each other."
2. **कानून स्वतन्त्रता का संरक्षक है**—कानून स्वतन्त्रता का जनक ही नहीं वह उसका संरक्षक भी है। कल्पना कीजिए उस स्थिति की जबकि कोई व्यवस्था नहीं है, न अपराधियों को दण्ड देने के लिए कानून है और न उनका पालन कराने के लिए सरकार। ऐसी स्थिति में मत्स्य न्याय या जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ होगी। ऐसी दशा में स्वतन्त्रता की आशा व्यर्थ है। इस प्रकार कानून से ही स्वतन्त्रता की सुरक्षा होती है।
3. **कानून वास्तविक स्वतन्त्रता की उत्पत्ति करता है**—अनेक विचारकों की यह धारणा है कि कानून वास्तविक स्वतन्त्रता का जन्मदाता है। राज्य कानून का निर्माण करता है, परन्तु राज्य व्यक्ति की ही भावनाओं का प्रतीक होता है। राज्य की आज्ञा के पालन में व्यक्ति अपनी ही आज्ञा का पालन करता है।
4. **स्वतन्त्रता पर कानून का नियन्त्रण अनिवार्य है**—व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कानून का नियन्त्रण अनिवार्य है, अन्यथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं रह सकती। **ह्वाइट** का कथन है कि "केवल स्वतन्त्रता ही एक ऐसी वस्तु है, जिसे तुम तब तक प्राप्त नहीं कर सकते हो, जब तक तुम इसे दूसरों को देने के लिए तत्पर न हो।"
5. **कानून स्वतन्त्रता में वृद्धि करते हैं**—'अधिकार पत्र' (Bill of Rights) जैसे अनेक कानून मानव स्वतन्त्रता की वृद्धि में सहायक हुए हैं। इस सम्बन्ध में **लॉक** ने ठीक ही लिखा है कि "कानूनों का उद्देश्य स्वतन्त्रता का उन्मूलन करना अथवा उसको रोकना नहीं है, अपितु इसका उद्देश्य स्वतन्त्रता की रक्षा तथा वृद्धि करना है।

प्र.12. साइबर क्राइम से आपका क्या तात्पर्य है? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
***अथवा* भारत में साइबर क्राइम रोकने के लिए क्या उपाय किये गये हैं? वर्णन कीजिए।**

उत्तर

साइबर अपराध (Cyber Crime)

अर्थ—एक ओर सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति ने विश्व को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, तो दूसरी ओर इससे अपराध के क्षेत्र में नये प्रकार के अपराधों का जन्म भी हुआ है। साइबर क्राइम का सम्बन्ध सूचना प्रौद्योगिकी के महत्त्वपूर्ण उपकरण—कम्प्यूटर—द्वारा होने वाली सूचनाओं के आदान-प्रदान एवं व्यापारिक लेन-देन से है। वर्तमान में इण्टरनेट, संचार के प्रमुख माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया है। संचार की इस मुक्त प्रणाली में सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए अति आवश्यक है कि डिजिटल जानकारी किसी अनचाहे व्यक्ति के हाथ में पड़ने से बचाने के लिए सुरक्षा प्रणाली स्थापित हो। जनता में इस माध्यम के इस्तेमाल से व्यापार, संचार, मनोरंजन, सॉफ्टवेयर विकास करने के प्रति एकमात्र विश्वास ही जरूरी नहीं है, अपितु प्रशासन में भी पूरा विश्वास होना आवश्यक है ताकि इसका प्रभावशाली ढंग से दुरुपयोग रोका जा सके।

साइबर अपराध मुख्यत: इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों द्वारा सूचनाओं के आदान-प्रदान, विशेष रूप से ई-मेल, बैंकिंग एवं ई-व्यापार के दुरुपयोग से सम्बन्धित है। यह अपराध केवल भारत में ही नहीं, अपितु सभी देशों में चिन्ता का कारण है तथा सभी देश इस पर नियन्त्रण करने में प्रयासरत हैं। वस्तुत: डिजिटल तकनीक ने संचार व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं तथा इसका व्यापारिक गतिविधियों में अत्यधिक प्रयोग होने लगा है। आज व्यापारी एवं उपभोक्ता परम्परागत फाइलों के स्थान पर कम्प्यूटरों में सभी प्रकार की सूचनाएँ सुरक्षित रख रहे हैं। कागज एवं फाइल सरलता से खराब हो सकती हैं जबकि कम्प्यूटर में रखी गई सूचना वर्षों तक पूर्णतया सुरक्षित रहती है। साइबर अपराध का सम्बन्ध इस सूचना का किसी अनधिकृत व्यक्ति द्वारा दुरुपयोग करना है।

साइबर अपराधों के प्रमुख प्रकार (Major Types of Cyber Crimes)

साइबर अपराध किसी एक रूप में विद्यमान नहीं है, अपितु यह अनेक रूपों में आज सम्पूर्ण विश्व के सामने एक चुनौती के रूप में मुँह खोले खड़ा है। इसके निम्नलिखित चार प्रमुख रूप हैं—

1. **कम्प्यूटर आधारित प्रलेखों के साथ हेर-फेर**—इस प्रकार के साइबर अपराध में कोई व्यक्ति जान-बूझकर कम्प्यूटर में प्रयुक्त गुप्त कोड, कम्प्यूटर प्रोग्राम, कम्प्यूटर सिस्टम अथवा कम्प्यूटर नेटवर्क के साथ हेर-फेर करता है या इन्हें हानि पहुँचाने का प्रयास करता है।
2. **कम्प्यूटर सिस्टम को अपने नियन्त्रण में लेना**—इस प्रकार के साइबर अपराध में कोई व्यक्ति किसी सरकारी वेबसाइट अथवा कम्प्यूटर सिस्टम को जान-बूझकर किसी माध्यम से अपने नियन्त्रण में ले लेता है तथा उसमें सुरक्षित सूचनाओं में हेर-फेर करता है अथवा उन्हें समाप्त करने का प्रयास करता है। इसे हैकिंग (Hacking) के रूप में जाना जाता है। हैकर्स दूसरे के प्रोग्राम सिस्टम का अवैध रूप से शोषण करते हैं और पूरे प्रोग्राम को नष्ट कर देते हैं। अनेक देशों में इस प्रकार के साइबर अपराधों की संख्या में भी लगातार वृद्धि होती जा रही है।
3. **अश्लील सामग्री का प्रसारण**—इस प्रकार के साइबर अपराध में व्यक्ति कुछ ऐसी अश्लील सामग्री को इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से प्रसारित करता है जिसका देखने वालों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वे ऐसी सामग्री को दर्शकों को पढ़ाकर, दिखाकर अथवा अश्लील बातों को सुनाकर इस सन्दर्भ में कानून द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों को तोड़ने का प्रयास करते हैं।
4. **स्टॉकिंग, डाटा डिडलिंग एवं फिकरिंग**—स्टॉकिंग वह तकनीक है जिसमें किसी अनिच्छुक व्यक्ति को लगातार डरावने या अश्लील सन्देह भेजे जाते हैं जिससे उसे संत्रास हो अथवा जिससे उसमें चिन्ता उत्पन्न हो। डाटा डिडलिंग में उपलब्ध 'डाटा' को इस प्रकार मिटाया या सूक्ष्म रूप से परिवर्तित किया जाता है कि उसे पुन: प्राप्त न किया जा सके अथवा उसकी परिशुद्धता नष्ट हो जाये। फिकरिंग में टेलीफोन के बिलों में कम्प्यूटर द्वारा फेरबदल करके बिना मूल्य चुकाये कहीं भी फोन काल करके अवैध लाभ उठाया जाता है।

उपर्युक्त साइबर अपराधों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के कम्प्यूटर वाइरस को तैयार करके सॉफ्टवेयर को गम्भीर क्षति पहुँचाने के मामलों में भी तीव्र वृद्धि हुई है। वर्तमान में करोड़ों की संख्या में ऐसे वायरस अस्तित्व में हैं जिनके कारण इण्टरनेट साइट्स को गम्भीर क्षति हो रही है।

भारत में साइबर अपराधों की रोकथाम हेतु किये गये उपाय
(Measures Adopted to Check Cyber Crimes in India)

आई०टी० प्रणालियों और नेटवर्कों में जटिलता बढ़ने से प्रदाताओं और उपभोक्ताओं दोनों के लिए सुरक्षा चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इनका सामना निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है—

1. सुरक्षा नीति, शिकायत और आश्वासन,
2. सुरक्षा अनुसन्धान एवं विकास,
3. सुरक्षा प्रशिक्षण।

भारत सरकार ने साइबर अपराधों की रोकथाम हेतु 'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 ई०' (The Information Technology Act, 2000) पारित किया है। यह अधिनियम इलेक्ट्रॉनिक व्यापार के लिए आवश्यक कानूनी एवं प्रशासनिक ढाँचा उपलब्ध करता है। पहले यह अधिनियम 16 दिसम्बर, 1999 ई० को लोकसभा में पेश किया गया था, परन्तु इस पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सका।

16 मई, 2000 ई० को यह पुन: कुछ संशोधनों के साथ लोकसभा में पेश होने पर पारित कर दिया गया। राज्यसभा ने 17 मई, 2000 ई० को इस अधिनियम को अपनी स्वीकृति प्रदान की तथा राष्ट्रपति द्वारा 9 जून, 2000 ई० को हस्ताक्षर किये जाने के साथ ही यह अधिनियम भारत में लागू हो गया।

एक ओर सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम डिजिटल हस्ताक्षर के इलेक्ट्रॉनिक प्राधिकरण हेतु महत्त्वपूर्ण ढाँचा उपलब्ध कराता है, तो दूसरी ओर यह लोगों में विश्वास भी उत्पन्न करता है कि साइबर से सम्बन्धित धोखाधड़ी करने पर सम्बन्धित व्यक्ति सजा पाने का हकदार होगा। इस अधिनियम के अमल के लिए स्थापित सत्यापन प्राधिकरण नियन्त्रक ने राष्ट्रीय ढाँचा तैयार किया है जो कि सभी सत्यापन अधिकृत एजेन्सियों/व्यक्तियों के प्रमाण-पत्र पर डिजिटल रूप से हस्ताक्षर के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। फरवरी 2002 से प्रमाण-पत्र प्राधिकरण में निम्नलिखित सम्मिलित हैं—

1. टाटा कंसल्टेन्सी सर्विसेज
2. बैंकिंग प्रौद्योगिकी के विकास एवं अनुसन्धान का संस्थान
3. राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र तथा
4. साइंस क्राफ्ट लिमिटेड।

उपर्युक्त अधिनियम के अतिरिक्त दिल्ली और बंगलुरु में भारतीय कम्प्यूटर आपातकालीन बचाव दल का गठन किया गया है ताकि भारत की सूचना प्रौद्योगिकी परिसम्पत्तियों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जा सके।

'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 ई०' के पारित होने के साथ डिजिटल हस्ताक्षरों को कानूनी मान्यता मिल गई है तथा सरकारी प्रलेखों में सरकारी अभिकरण इनका प्रयोग कर रहे हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत साइबर अपराध से पीड़ित पक्ष द्वारा अपनी शिकायत दर्ज करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने 'साइबर अपील ट्रिब्यूनल' (Cyber Appellate Tribunal) की स्थापना की है। इस ट्रिब्यूनल में एकमात्र अध्यक्ष होगा जिसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार करेगी। इस नियुक्ति हेतु व्यक्ति का हाईकोर्ट का वर्तमान या भूतपूर्व न्यायाधीश होना अथवा भारतीय कानूनी सेवा का सदस्य होना अथवा पिछले तीन वर्षों से प्रथम श्रेणी की सेवा में नियुक्त होना अनिवार्य है। अध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, होगा।

'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 ई०' के अन्तर्गत पुलिस विभाग के अधिकारियों को ये अधिकार प्रदान किये गये हैं कि इस प्रकार के अपराध में लिप्त व्यक्तियों को वे बिना सम्मन के गिरफ्तार कर सकते हैं। कोई भी उप-पुलिस अधीक्षक रैंक का अधिकारी किसी भी सरकारी या निजी स्थान पर इस अपराध से सम्बन्धित तलाशी ले सकता है। यदि उसे किसी प्रकार के साक्ष्य मिलते हैं तो सम्बन्धित व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सकता है। ऐसे दोषी को अपराधी प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) के प्रावधानों के अनुरूप न्यायाधीश के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य किया गया है।

'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 ई०' के अतिरिक्त सरकार ने साइबर अपराधों को रोकने हेतु निम्नलिखित नियम पारित किये हैं—

1. Enforcement Notification of IT Act, 2000,
2. Information Technology (Certifying Authorities) Rules, 2000,
3. Cyber Regulations Appellate Tribunal (Procedure) Rules, 2000,
4. Information Technology (Other Powers of Civil Court Vested in Cyber Appellate Tribunal) Rules, 2003,

5. Information Technology (Qualification and Experience of Adjudicating Officers and Manner of Holding Enquiry) Rules, 2003,
6. Cyber Regulations Appellate Tribunal (Salary, Allowances and Other Terms and Conditions of Service of Presiding Officer) Rules, 2003,
7. Information Technology (Other Standards) Rules, 2003 तथा
8. Cyber Regulation Advisory Committee.

2008 में सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधित) अधिनियम लागू किया गया है। इस अधिनियम के महत्त्वपूर्ण खण्डों को अक्टूबर 2009 में अधिसूचित कर दिया गया था जो राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। यह अधिनियम देश में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निवेशकों और उपभोक्ताओं को विश्वास में लेकर वर्तमान विधि के ढाँचे को विस्तृत करता है। 11 अप्रैल, 2011 को सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 के अन्तर्गत निम्नांकित नियमों को अधिसूचित किया गया था—

1. सूचना प्रौद्योगिकी (इलेक्ट्रॉनिक सर्विस डिलीवरी) नियम, 2011 खण्ड 79 के अधीन,
2. सूचना प्रौद्योगिकी (रिजनेबल सिक्युरिटी प्रैक्टिस प्रैसिडर्स एण्ड सेंसेटिव पर्सनल इन्फॉर्मेशन) नियम, 2011 खण्ड 42ए के अधीन,
3. सूचना प्रौद्योगिकी (इण्टरमीडिएरीज गाइडलाइन्स) नियम, 2011 खण्ड 79 के अधीन तथा
4. सूचना प्रौद्योगिकी (गाइडलाइन्स फॉर साइबर कैफे) नियम, 2011 खण्ड 79 के अधीन।

वर्ष 2010-11 के दौरान अनुसन्धान एवं विकास की जो परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. नेटवर्क सुरक्षा आक्रमण तक फिर से पहुँचने के लिए पैकेट मार्किंग स्कीम,
2. हनीपोट्स के लिए रिएक्टिव रोमिंग,
3. इण्टरप्राइज लेवल सिक्युरिटी मैट्रिक्स,
4. स्टेगनाइसिस कवरिंग डिजिटल मल्टीमीडिया ऑब्जेट्स,
5. साइड चैनल अटैक रेसिस्टेंट प्रोग्रामेबल ब्लॉक चिफर्स,
6. ट्रस्ट मॉडल फॉर क्लाउड कम्प्यूटिंग,
7. कम्प्यूटर फोरेंसिक प्रयोगशाला की स्थापना और प्रशिक्षण सुविधा तथा
8. प्रोबोबिलिस्टिक सिग्नेचर्स फॉर मेटामॉर्फिक मालफेयर डिटेक्शन की जाँच।

साइबर चेक वर्जन 4.1 नामक साइबर फोरेंसिक उपकरण किट का परिष्कृत रूप विण्डो सिस्टम्स (विण्डो 2007 के साथ) तक पहुँचने की क्षमता, मैक सिस्टम्स और लिनक्स सिस्टम्स विकसित किया जा रहा है। कानून लागू करने वाले अभिकरणों की जरूरतों को पूरा करने के लिए साइबर फोरेंसिक व्यावहारिक प्रशिक्षण की क्षमता में वृद्धि के लिए प्रशिक्षण मॉडयूल्स पर आधारित वर्चुअल प्रशिक्षण वातावरण का निर्माण किया गया है। प्रयोगकर्त्ता संगठनों द्वारा वेब आधारित सूचना प्रौद्योगिकी सुरक्षा ढाँचा और अभियानात्मक प्रबन्धन उपकरण सूट विकसित और परीक्षित किया जा रहा है तथा अतिरिक्त सेवाओं के साथ दक्षता विकास के परीक्षण मंच के लिए कृत्रिम प्रशिक्षण वातावरण विकसित किया जा रहा है।

भारत में विभिन्न प्रकार के वित्तीय एवं गैर-वित्तीय लेन-देन को सुरक्षित बनाने, जल्दी और आसान तरीके से निपटाने के लिए बहूपयोगी स्मार्ट कार्ड (MASC) में वृद्धि हो रही है। कार्ड तकनीकी प्रगति के साथ-साथ किफायती होते जा रहे हैं तथा इस कारण एक ही कार्ड पर अनेक उपयोग उपलब्ध करा पाना कम्पनियों के लिए सम्भव हो पाया है। भारत में इन कार्डों के दुरुपयोग को रोकने के लिए तथा बहुपयोग स्मार्ट कार्ड के समान मानकों को तैयार करने के लिए उच्च स्तरीय समिति का गठन किया गया है। इससे सम्बन्धित उत्पादों एवं प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने के लिए सुरक्षा, परीक्षण उपायों की कुछ विकास परियोजनाएँ चलाई गई हैं; जैसे—'मल्टी एप्लीकेशन्स' 'स्मार्ट कार्ड बेस्ड पेमेण्ट सिस्टम' और 'स्मार्ट कार्ड पर ट्रांसपोर्ट एप्लीकेशन्स'।

सरकार द्वारा उठाये गये उपर्युक्त कदमों के बाद भी अभी भी जनसाधारण ई-व्यापार करने में संकोच करते हैं ताकि उसे किसी प्रकार की क्षति न हो सके। सरकार जनसाधारण में अभी तक इसके प्रति जरूरी विश्वास पैदा नहीं कर पायी है। साथ ही, साइबर अपराधों को रोकने हेतु सरकारी प्रयास अपर्याप्त ही नहीं, अपितु निरर्थक भी सिद्ध हो रहे हैं। अभी भी इस क्षेत्र में ओर अधिक उपाय किये जाने की आवश्यकता है।

प्र.13. साइबर सुरक्षा के प्रमुख खतरे कौन-कौन से हैं? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर

साइबर सुरक्षा के प्रमुख खतरे
(Threats for Cyber Security)

एक अध्ययन के अनुसार वर्तमान में लगभग 166 प्रकार के कम्प्यूटर क्राइम हैं, जिन्हें साइबर क्राइम की श्रेणी के अन्तर्गत रखा जा सकता है लेकिन साधारणतया इन सभी अपराधों को तीन स्वरूपों में समझाया जा सकता है। प्रथम किसी व्यक्ति या समुदाय के विरुद्ध, द्वितीय धन या सम्पत्ति के हेर-फेर और तृतीय सरकार या सरकारी संस्था के विरुद्ध, इसे साइबर आतंकवाद के रूप में भी पहचाना गया है। व्यापक रूप में देखा जाए तो इण्टरनेट के माध्यम से किये गये अपराध जिसमें क्रेडिट कार्ड, धोखाधड़ी, पहचान की चोरी, बाल पोर्नोग्राफी, सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से अभद्रता, अनैतिक संगणक भंजन (हैकिंग), निजता का हनन आदि को साइबर अपराध के रूप में जाना जाता है।

भारत इण्टरनेट उपयोग करने वाला विश्व का तीसरा सबसे बड़ा देश है। आज साइबर क्राइम सबसे ज्वलन्त एवं चर्चित समस्या के रूप में विश्व के सम्मुख खड़ा है। साइबर अपराध के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं—

1. **साइबर बुलिंग**—फेसबुक जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट पर अशोभनीय कमेण्ट करना, धमकियाँ देना, मजाक उड़ाना या तंग करना, शर्मिन्दा करना या इण्टरनेट का दुरुपयोग करना साइबर बुलिंग कहलाता है। प्राय: टीन एजर इसका शिकार होते हैं। यह साइबर उत्पीड़न (Cyber harassment) भी कहलाता है।
2. **सॉफ्टवेयर पाइरेसी**—नकली सॉफ्टवेयर को तैयार कर सस्ते दामों में बेचना भी साइबर क्राइम के अन्तर्गत आता है। पाइरेसी का एक समान्तर साइबर बाजार सॉफ्टवेयर कम्पनियों को भारी नुकसान पहुँचा रहा है।
3. **वायरस फैलाना**—साइबर अपराधी कुछ ऐसे सॉफ्टवेयर निजी कम्प्यूटर पर भेजते हैं जिसमें वायरस छिपे हो सकते हैं; जैसे—वायरस, वॉर्म, टॉर्जन हॉर्स, लॉजिक हॉर्स इत्यादि। ये वायरस तथा वार्म कम्प्यूटर को बहुत हानि पहुँचा सकते हैं।
4. **फिशिंग**—किसी को फर्जी ई-मेल भेजकर या प्रलोभन देकर ठगा जाता है। फर्जी मैसेज या फोन कॉल से एटीएम नम्बर या पासवर्ड की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। बैंक का बहाना बनाकर ग्राहकों को फँसाया जाता है।
5. **हैकिंग**—साइबर अपराधी किसी कम्प्यूटर नेटवर्क में प्रवेश करके किसी की निजी जानकारी; जैसे—नेट बैंकिंग पासवर्ड, क्रेडिट/डेबिट कार्ड का कोड या पासवर्ड एवं जानकारी को चुरा लेता है।
6. **साइबर स्टॉकिंग**—यह ऑनलाइन एवं ऑफलाइन दोनों तरीकों से किया जा सकता है। इसमें पीड़ित को मैसेज या ई-मेल से परेशान किया जाता है। सीएस या साइबर स्टॉकिंग एक तरह के मानसिक कुण्ठा की प्रवृत्ति है, जो पीड़ित के जीवन को न केवल तहस-नहस कर सकती है, बल्कि उसे मनोरोग, मृत्यु या आत्महत्या तक किसी भी त्रासदी में धकेल सकती है। साइबर स्टॉकिंग का आशय है आभासी दुनिया में किसी व्यक्ति की निजता का अतिक्रमण करना, उसकी हर एक गतिविधि पर नजर रखना और अवैध रूप से सूचनाओं का प्रयोग करते हुए सम्बन्धित व्यक्ति का मानसिक उत्पीड़न करना।
7. **साइबर वारफेयर**—जब साइबर अपराध की गतिविधियाँ अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पार करके किसी अन्य देश के हितों को अपनी सीमा में ले लेती हैं तो यह प्रघटना साइबर वारफेयर कहलाती है।
8. **स्पैमिंग**—अनावश्यक एवं भारी संख्या में एक साथ मेल/मैसेज भेजकर परेशान करना। ये प्राय: किसी अवैध/समान/सेवा को बेचने या ऑफर देने से सम्बन्धित होते हैं।
9. **स्पूफिंग**—इण्टरनेट नेटवर्क पर किसी यूजर द्वारा अपनी असली पहचान छिपाना और नकली (fake) पहचान बनाकर अटैक या फ्रॉड करना, स्पूफिंग कहलाता है।

10. **साइबर वसूली**—जब किसी वेबसाइट या सर्वर या कम्प्यूटर इकाई को लगातार धमकी दी जाती है और उससे किसी सर्विस के बदले पैसों की माँग करके ब्लैकमेल किया जाता है, तो इसे साइबर वसूली कहते हैं।
11. **डॉस अटैक**—यह ऐसा साइबर आक्रमण है जिसमें मशीन विशेष में इण्टरनेट या होस्ट सर्विस में रुकावट पैदा कर दी जाती है। यह प्राय: वाणिज्यिक या बैंकिंग क्षेत्र में घटित होता है।
12. **साइबर आतंकवाद**—सूचना क्रान्ति ने विश्व को एक नये संकट एवं चुनौती से अवगत कराया है। कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट के माध्यम से समाज में डर, खौफ, आतंक एवं भय उत्पन्न करना साइबर आतंकवाद है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66 (एफ) में इसके लिए आजीवन कारावास की सजा का प्रावधान किया गया है।
13. **डार्कनेट मार्केट**—इस प्रक्रिया से नशीले पदार्थ एवं ड्रग्स का अवैध आदान-प्रदान होता है। डार्क वेबसाइट सिल्करोड (Silk Road) ने इस क्षेत्र में बहुत बड़ा बाजार विकसित कर लिया है।
14. **पहचान या पासवर्ड चोरी**—ई-बैंकिंग एवं ई-पेमेन्ट करने वालों के लिए यह साइबर अपराध भारी आर्थिक नुकसान का कारण बन सकता है।
15. **रेनसमवेयर मालवेयर**—यह एक कम्प्यूटर वायरस है जो वार्म (Worm) में कॉम्बिनेशन में प्रयोग में लाया जा रहा है। यह कम्प्यूटर फाइल को नष्ट करने की धमकी देता है कि यदि अपनी फाइलों को बचाना है तो फिरौती फीस चुकानी होगी। ये वायरस कम्प्यूटर में मौजूद फाइलों और वीडियो को इनक्रिप्ट कर देता है और उन्हें फिरौती देने के बाद ही डिक्रिप्ट किया जा सकता है। 15 मई, 2017 को रेनसमवेयर ने भारत और यूरोप सहित दुनिया के 100 से अधिक देशों को चपेट में ले लिया था।

21वीं सदी में साइबर अपराध एक नई और विकट समस्या के रूप में तीव्रगति से पूरे विश्व में उभर रहा है। साइबर अपराध को एक बन्द कमरे से भी अंजाम दिया जा सकता है। दुनिया के किसी भी कोने में बैठकर साइबर अपराधी बड़ी-बड़ी घटनाओं को अंजाम देते हैं। ये सफेदपोश अपराधी विधिक प्रावधानों और कानूनों से बचते हुए समाज में आदर-सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त रहते हैं। इनकी पहचान करना आसान कार्य नहीं है। अक्सर देखा गया है कि साइबर अपराध की स्पष्ट व्याख्या के अभाव में अपराधी सजा पाने से बच जाते हैं। साइबर अपराधों को नियन्त्रित करने के लिए और अधिक सख्त कानून के साथ सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 तथा भारतीय दण्ड संहिता के प्रावधानों को कठोरता से लागू करने की जरूरत है।

❑

TOUCH 'n PASS

UNIT-II

अधिकार, कर्त्तव्य एवं नागरिक चार्टर

Rights, Obligations and Citizen's Charter

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. नागरिकों के दो मानव अधिकारों को लिखिए।

उत्तर 1. जीवन बिताने का अधिकार तथा 2. विचार प्रकट करने का अधिकार।

प्र.2. नागरिकों के दो राजनीतिक अधिकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर 1. मतदान का अधिकार तथा 2. निर्वाचित होने का अधिकार।

प्र.3. अधिकारों का कौन-सा सिद्धान्त सबसे अधिक सन्तोषप्रद है?

उत्तर अधिकारों का आदर्शवादी सिद्धान्त सबसे अधिक सन्तोषप्रद है।

प्र.4. अधिकार के किन्हीं दो तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर अधिकार के दो तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. सार्वभौमिकता और 2. राज्य का संरक्षण।

प्र.5. अधिकार किसे कहते हैं?

उत्तर अधिकार वह माँग है, जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य कार्यान्वित करता है।

प्र.6. कानूनी अधिकार कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर कानूनी अधिकार दो प्रकार के होते हैं—

1. सामाजिक अधिकार तथा 2. राजनीतिक अधिकार।

प्र.7. राजनीतिक अधिकार किसे कहते हैं?

उत्तर राजनीतिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो किसी राज्य द्वारा अपने देश के नागरिकों को प्रदान किये जाते हैं। **डॉ० बेनीप्रसाद** के अनुसार—"राजनीतिक अधिकार का तात्पर्य उन व्यवस्थाओं से है, जिनमें नागरिकों को शासन कार्य में भाग लेने का अवसर प्राप्त होता है तथा नागरिक शासन प्रबन्ध को प्रभावित कर सकते हैं।"

प्र.8. नागरिक के किन्हीं चार राजनीतिक अधिकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर चार राजनीतिक अधिकार निम्नलिखित हैं—

1. मतदान देने का अधिकार, 2. निर्वाचित होने का अधिकार, 3. आवेदन-पत्र देने का अधिकार तथा 4. न्याय प्राप्त करने का अधिकार।

प्र.9. चार सामाजिक अधिकार लिखिए।

उत्तर चार सामाजिक अधिकार निम्नलिखित हैं—

1. जीवनरक्षा का अधिकार, 2. सम्पत्ति रखने का अधिकार, 3. शिक्षा का अधिकार तथा 4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।

प्र.10. अधिकार और कर्त्तव्य के सम्बन्ध के विषय में कोई दो तथ्य दीजिए।

उत्तर अधिकार और कर्त्तव्य के सम्बन्ध पर आधारित दो तथ्य हैं—

1. अधिकार और कर्त्तव्य दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।
2. कर्त्तव्य अधिकारों का सदुपयोग है।

TOUCH n PASS

प्र.11. राज्य के प्रति नागरिक के कोई दो कर्त्तव्य बताइए।

उत्तर 1. कानूनों का पालन करना तथा 2. करों को समय पर चुकाना।

प्र.12. नागरिक के तीन वैधानिक कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर नागरिक के तीन वैधानिक कर्त्तव्य हैं—1. राज्य के प्रति भक्ति, 2. राज्य के कानूनों का पालन तथा 3. करों का भुगतान।

प्र.13. नागरिक के किन्हीं चार नैतिक कर्त्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर नागरिक के चार नैतिक कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं—1. अपने प्रति कर्त्तव्य, 2. परिवार के प्रति कर्त्तव्य, 3. समाज के प्रति कर्त्तव्य तथा 4. मानवता के प्रति कर्त्तव्य।

प्र.14. कर्त्तव्य किसे कहते हैं?

उत्तर समाज तथा राज्य की वे व्यवस्थाएँ कर्त्तव्य कहलाती हैं, जिनके द्वारा कुछ कार्यों को करना और कुछ का न करना उचित तथा अनिवार्य समझा जाता है।

प्र.15. अधिकारों की एक परिभाषा लिखिए।

उत्तर **डॉ० बेनीप्रसाद** के अनुसार, "अधिकार वे सामाजिक दशाएँ हैं, जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं।"

प्र.16. संविधान के किस संशोधन अधिनियम द्वारा शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया है?

उत्तर 86वें संविधान संशोधन अधिनियम-2002 द्वारा अनुच्छेद 21-क के अन्तर्गत शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा प्रदान किया गया।

प्र.17. बच्चों के लिए शिक्षा का क्या महत्त्व है?

उत्तर शिक्षा बच्चों के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, इसके द्वारा बच्चों के जीवन का सर्वांगीण विकास होता है, घरेलू कार्यों का भार उन पर कम होता है और बाल श्रम से पूर्णतः मुक्त होते हैं।

प्र.18. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में शिक्षा के विषय में क्या उल्लेख है?

उत्तर मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (Universal Declaration of Human Rights—UDHR) उल्लेख करती है कि "प्रत्येक को शिक्षा का अधिकार है जो निःशुल्क, कम-से-कम प्रारम्भिक और आधारभूत अवस्थाओं में होगा।"

प्र.19. शिक्षा के दो प्रयोजन लिखिए।

उत्तर शिक्षा केवल तथ्यों का अधिगम करना मात्र नहीं है, शिक्षा के प्रयोजन हैं—

1. मानव अधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रता के लिए सम्मान सुदृढ़ करना।
2. मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और उसको सम्मान की भावना की ओर ले जाना।

प्र.20. संविधान में अनुच्छेद 21-क के अनुसार बालक को किस वर्ष तक निःशुल्क शिक्षा पाने का अधिकार दिया गया है?

उत्तर अनुच्छेद 21-क में घोषणा की गई है कि राज्य 6 से 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएगा।

प्र.21. भारत में नागरिक चार्टर लागू करने का कार्य किस प्रकार प्रारम्भ हुआ?

उत्तर प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग ने भारत सरकार में नागरिक चार्टर के समन्वय, प्रारूपण और लागू कराने का कार्य प्रारम्भ किया। चार्टर तैयार करने के लिए दिशा-निर्देश और 'क्या करें तथा क्या नहीं करें' की सूची विभिन्न सरकारी विभागों/संगठनों को सौंपी गई ताकि वे केन्द्रित और प्रभावी चार्टर तैयार करने में पूर्ण रूप से सक्षम हो सकें।

प्र.22. यू०के० की नागरिक चार्टर पहल का क्या प्रभाव पड़ा?

उत्तर यू०के० की नागरिक चार्टर पहल ने विश्व में व्यापक रुचि उत्पन्न की। इसके प्रभाव के कारण ही अनेक देशों ने समान कार्यक्रम जैसे कि ऑस्ट्रेलिया (सेवा चार्टर 1997), कनाडा (सेवा मानक पहल, 1995), बेल्जियम (लोक सेवा प्रयोक्ता चार्टर, 1992), फ्रांस (सेवा चार्टर, 1992) भारत (नागरिक चार्टर, 1997), जमैका (नागरिक चार्टर, 1994), मलेशिया (ग्राहक चार्टर, 1993), पुर्तगाल (द क्वालिटी चार्टर इन पब्लिक सर्विसेज, 1993) और स्पेन (द क्वालिटी ओब्जरवेटरी, 1992), (ओईसीडी 1996) लागू किये।

प्र.23. नागरिक चार्टर की किन्हीं तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर नागरिक चार्टर की विशेषताएँ—इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. इससे किसी भी प्रशासनिक संगठन की जवाबदेयता तथा प्रतिबद्धता का आभास होता है।
2. यह सुशासन की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान करने का एक उपकरण है।
3. नागरिक चार्टर प्राय: दो-चार पृष्ठों के ऐसे छोटे दस्तावेज होते हैं जिन्हें आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है या कुछ समय में पढ़ा जा सकता है।

प्र.24. नागरिक चार्टर की अवधारणा का जन्म किस प्रकार हुआ?

उत्तर सन् 1991 में नागरिक चार्टर के रूप में श्वेत-पत्र जारी करके सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन द्वारा इस अवधारणा की शुरुआत की गई। अपने नागरिकों को बेहतर सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, बेल्जियम, पुर्तगाल, स्पेन, कनाडा और अमेरिका की सरकारों द्वारा ग्रेट ब्रिटेन की सरकार का अनुसरण किया गया। इन देशों ने नीतिगत उद्देश्य के एक हिस्से के रूप में नागरिकों के अधिकार वाला नागरिक चार्टर अंगीकार किया। भारत में भी सार्वजनिक सेवा वितरण के लिए अधिकार-आधारित उपागम का अनुसरण किया गया।

प्र.25. नागरिक चार्टर के लाभ एवं मुख्य तत्त्व लिखिए।

उत्तर नागरिक चार्टर सरकार एवं नागरिकों के सम्बन्धों पर आधारित अवधारणा है। यह सार्वजनिक सेवाओं को इसके प्रयोक्ता अर्थात् नागरिकों के दृष्टिकोण से प्रदर्शित करती है। फिर भी नागरिक चार्टर नागरिकों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है, यह कतिपय मानकों, गुणवत्ता और निर्धारित अवधि पर आधारित सार्वजनिक सेवा प्रणाली को और बेहतर बनाने का एक साधन प्रस्तुत करता है। यह नागरिकों को और अधिक शक्ति तथा चुनने की और अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है। नागरिक चार्टर के मुख्य तत्त्व हैं—मानक, सूचना और खुलापन, विकल्प और परामर्श, शिष्टाचार और सहायता, चीजों को सही क्रम में रखना और पैसे का मूल्य समझना।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. अधिकारों का आदर्शवादी सिद्धान्त क्या है? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर

अधिकारों का आदर्शवादी सिद्धान्त
(Idealistic Theory of Rights)

इस सिद्धान्त की मान्यता है कि अधिकार वे बाह्य साधन तथा दशाएँ हैं, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक होती हैं। इस सिद्धान्त का समर्थन **थॉमस हिल ग्रीन, ब्रैडले, बोसांके** आदि विचारक ने किया है।

मान्यताएँ—इस सिद्धान्त की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं—

1. अधिकार व्यक्ति की माँग है।
2. यह माँग समाज द्वारा स्वीकृत होती है।
3. अधिकार व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक साधन हैं।
4. अधिकारों का उद्देश्य समाज का वास्तविक हित है।
5. अधिकारों का स्वरूप नैतिक होता है।

आलोचना—इस सिद्धान्त के कतिपय दोष निम्नलिखित हैं—

1. यह व्यक्ति के हितों पर अधिक बल देता है तथा समाज का स्थान गौण रखता है। अत: व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए समाज के हितों के विरुद्ध कार्य कर सकता है।
2. यह सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है; क्योंकि व्यक्तित्व का विकास व्यक्तिगत पहलू है तथा राज्य एवं समाज जैसी संस्थाओं के लिए यह जानना बहुत कठिन है कि किसके विकास के लिए क्या आवश्यक है।
3. मानव-जीवन के विकास की आवश्यक परिस्थितियाँ कौन-सी हैं, इनका निर्णय कौन करेगा तथा ये किस-किस प्रकार उपलब्ध होंगी—इन बातों का स्पष्टीकरण नहीं होता है। अत: इस सिद्धान्त की आधारशिला ही अवैज्ञानिक है।

निष्कर्ष—अध्ययनोपरान्त हम कह सकते हैं कि अधिकारों का आदर्शवादी सिद्धान्त ही सर्वोपयुक्त है, क्योंकि यह इस अवधारणा पर आधारित है कि अधिकारों की उत्पत्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए है। राज्य तथा समाज को केवल व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा तथा व्यवस्था करने के साधन मात्र हैं। व्यक्ति समाज के कल्याण में ही अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।

प्र.2. अधिकारों से सम्बन्धित प्राकृतिक सिद्धान्त और वैधानिक सिद्धान्त के विषय में आप क्या जानते हैं?

उत्तर लॉक, हॉब्स तथा **रूसो** आदि विद्वानों ने अधिकारों के प्राकृतिक सिद्धान्त का समर्थन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार प्रकृति-प्रदत्त हैं और वे व्यक्ति को जन्म के साथ ही प्राप्त हो जाते हैं। व्यक्ति प्राकृतिक अधिकारों का प्रयोग राज्य के उदय के पूर्व से ही करता आ रहा है।

राज्य इन अधिकारों को न तो छीन सकता है और न ही वह इनका जन्मदाता है। **टॉमस पेन** के अनुसार, **"प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो मनुष्य के अस्तित्व को स्थायित्व प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं।"** इस दृष्टिकोण से अधिकार असीमित, निरपेक्ष तथा स्वयंसिद्ध हैं। राज्य इन अधिकारों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

आलोचना—इस सिद्धान्त में कतिपय दोष निम्नलिखित हैं—

1. **ग्रीन** का मत है कि समाज से पृथक् कोई भी अधिकार सम्भव नहीं है।
2. यह सिद्धान्त अनैतिहासिक है, क्योंकि जिस प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत इन अधिकारों के प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है, वह काल्पनिक है।
3. यह सिद्धान्त कर्त्तव्यों के प्रति मौन है, जबकि कर्त्तव्य के अभाव में अधिकारों का अस्तित्व सम्भव नहीं है।
4. प्राकृतिक अधिकारों में परस्पर विरोधाभास पाया जाता है।
5. यह सिद्धान्त राज्य को कृत्रिम संस्था मानता है, जो अनुचित है।

अधिकारों का कानूनी या वैधानिक सिद्धान्त
(Legal and Constitutional Principles of Rights)

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक **बेन्थम, ऑस्टिन, हॉलैण्ड** आदि विचारक हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य की इच्छा का परिणाम है और राज्य ही अधिकारों का जन्मदाता है। यह सिद्धान्त प्राकृतिक सिद्धान्त के विपरीत है। व्यक्ति राज्य के संरक्षण में रहकर ही अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। राज्य ही कानून द्वारा ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करता है, जहाँ कि व्यक्ति अपने अधिकारों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग कर सके। राज्य ही अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अधिकारों का अस्तित्व केवल राज्य के अन्तर्गत ही सम्भव है।

आलोचना—इस सिद्धान्त में कतिपय दोष निम्नलिखित हैं—

1. अधिकारों में स्थायित्व नहीं रहता है।
2. राज्य नैतिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।
3. इस सिद्धान्त से राज्य की निरंकुशता का समर्थन होता है।

प्र.3. अधिकार राज्य की सत्ता पर, कुछ सीमाएँ लगाते हैं। उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

उत्तर अधिकार राज्य को कुछ विशिष्ट तरीकों से कार्य करने के लिए वैधानिक दायित्व प्रदान करते हैं। प्रत्येक अधिकार निर्देशित करता है कि राज्य के लिए क्या करने योग्य है और क्या नहीं। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति के जीवन जीने का अधिकार राज्य को ऐसे कानून बनाने के लिए बाध्य करता है जो दूसरों के द्वारा क्षति पहुँचाने से उसे बचाया जा सके। यह अधिकार राज्य से माँग करता है कि वह व्यक्ति को चोट या नुकसान पहुँचाने वालों को दण्डित करे। यदि कोई समाज अनुभव करता है कि जीने के अधिकार का आशय अच्छे स्तर के जीवन का अधिकार है, तो वह राज्य से ऐसी नीतियों के अनुपालन की अपेक्षा करता है, जो स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ पर्यावरण और अन्य आवश्यक निर्धारकों का प्रावधान करे।

अधिकार केवल यह ही नहीं बनाते कि राज्य को क्या करना है, वे यह भी बताते हैं कि राज्य को क्या कुछ नहीं करना है। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार कहता है कि राज्य केवल अपनी मर्जी से उसे गिरफ्तार नहीं कर सकता। अगर वह गिरफ्तार करना चाहता है तो उसे इस कार्यवाही को उचित ठहराना पड़ेगा, उसे किसी न्यायालय के समक्ष इस व्यक्ति की स्वतन्त्रता में कटौती करने का कारण स्पष्ट करना होगा। इसलिए किसी व्यक्ति को पकड़ने के लिए पहले गिरफ्तारी का वारण्ट दिखाना पुलिस के लिए आवश्यक होता है, इस प्रकार अधिकार राज्य की सत्ता पर कुछ सीमाएँ लगाते हैं।

दूसरे शब्दों में, कहा जाए तो हमारे अधिकार यह सुनिश्चित करते हैं कि राज्य की सत्ता वैयक्तिक जीवन और स्वतन्त्रता की मर्यादा का उल्लंघन किये बिना काम करे। राज्य सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न सत्ता हो सकता है, उसके द्वारा निर्मित कानून बलपूर्वक लागू किये जा सकते हैं, लेकिन सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न राज्य का अस्तित्व अपने लिए नहीं बल्कि व्यक्ति के हित के लिए होता है। इसमें जनता का ही अधिक महत्त्व है और सत्तात्मक सरकार को उसके ही कल्याण के लिए काम करना होता है।

प्र.4. किन आधारों पर यह अधिकार अपनी प्रकृति में सार्वभौमिक माने जाते हैं?

उत्तर राजनीतिक सिद्धान्तकार तर्क प्रस्तुत करते थे कि हमारे लिए अधिकार प्रकृति या ईश्वर प्रदत्त हैं। ये अधिकार हमें जन्म से प्राप्त हैं। परिणामस्वरूप कोई व्यक्ति या शासक हमसे इन्हें छीन नहीं सकता। उन्होंने मनुष्य के तीन प्राकृतिक अधिकार चिह्नित किये थे—जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार और सम्पत्ति का अधिकार। हम इन अधिकारों का दावा करें या न करें, व्यक्ति होने के कारण हमें यह प्राप्त हैं। यह विचार कि हमें जन्म से ही कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं, बहुत शक्तिशाली अवधारणा है, क्योंकि इसका अर्थ है 'जो ईश्वर प्रदत्त है' और उन्हें कोई मानव शासक या राज्य हमसे छीन नहीं सकता। ये अधिकार हमें जन्म से प्राप्त हैं।

प्र.5. अधिकार क्या हैं और वे महत्त्वपूर्ण क्यों हैं? अधिकारों का दावा करने के लिए उपयुक्त आधार क्या हो सकते हैं?

उत्तर 'अधिकार' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के दो शब्दों 'अधि' और 'कार' से मिलकर हुई है जिनका क्रमशः अर्थ है 'प्रभुत्व' और 'कार्य'। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ में अधिकार का अभिप्राय उस कार्य से है, जिस पर व्यक्ति का प्रभुत्व है। मानव एक सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज के अन्तर्गत ही व्यक्तित्व के विकास के लिए उपलब्ध सुविधाओं का प्रयोग करता है। इन अधिकारों के उपयोग से ही व्यक्ति, अपने शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक विकास का अवसर प्राप्त करता है। संक्षेप में, अधिकार मनुष्य के जीवन की वह अनिवार्य परिस्थिति है, जो विकास के लिए अति आवश्यक है तथा जिसे राज्य और समाज द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है।

अधिकारों का दावा करने के लिए उपयुक्त आधार निम्नलिखित हो सकते हैं—

1. सम्मान और गरिमापूर्ण जीवन बसर करने के लिए अधिकारों का दावा किया जा सकता है।
2. अधिकारों की दावेदारी का दूसरा आधार यह है कि वे हमारी बेहतरी के लिए आवश्यक हैं।

प्र.6. व्यक्ति राज्य के प्रति कर्त्तव्य की भावना क्यों रखता है?
***अथवा* राज्य व्यक्ति के लिए क्यों आवश्यक है?**

उत्तर

व्यक्ति के लिए राज्य की आवश्यकताएँ
(Requirements of State for a Person)

राज्य व्यक्ति तथा समाज के कल्याण के लिए कार्य करता है। इसलिए राज्य समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति के लिए राज्य की आवश्यकताएँ निम्नलिखित कारणों से आवश्यक हैं—

1. **राज्य द्वारा मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था**—व्यक्ति कार्य करने के पश्चात् मनोरंजन की इच्छा रखता है एवं उसकी प्राप्ति का प्रयास करता है। उसको मनोरंजन के अनेक साधन राज्य की ओर से ही मिलते हैं। राज्य द्वारा विभिन्न पार्कों, उद्यानों, पुस्तकालयों और मनोरंजन-गृहों की स्थापना की जाती है। इसलिए राज्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है।
2. **राज्य बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास में सहायक**—राज्य का मुख्य कार्य आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था करना है। दोनों दशाओं में सुरक्षा की व्यवस्था हो जाने से नागरिकों को सुख व शान्ति का अनुभव होने लगता है। सुरक्षा की व्यवस्था के परिणामस्वरूप ही व्यक्ति नवीन खोज, आविष्कार, साहित्य, संगीत आदि क्षेत्रों में उन्नति करता है। इस प्रकार बौद्धिक व सांस्कृतिक उन्नति के लिए भी राज्य की आवश्यकता है।
3. **राज्य द्वारा नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा**—राज्य नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है। राज्य के भय से आततायी व्यक्ति भी अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं कर पाता है और निर्बल पुरुष अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन नहीं रहता है। राज्य के द्वारा व्यक्ति के अधिकारों व कर्त्तव्यों की रक्षा की जाती है।
4. **राज्य द्वारा उचित न्याय व्यवस्था**—राज्य में न्यायपालिका व्यक्तियों को उचित न्याय प्रदान करती है। न्यायपालिका कानूनों की व्याख्या करती है तथा अपराधियों को दण्ड देती है। न्यायपालिका की स्वतन्त्र व्यवस्था हो जाने से राज्य में श्रमिकों का शोषण रुक जाता है, किसानों की जमींदारी से, श्रमिकों की पूँजीपतियों से तथा सेवकों की स्वामियों से रक्षा हो जाती है। इस प्रकार राज्य न्यायपालिका के द्वारा नागरिकों की सुरक्षा करता है। इसलिए राज्य की नागरिकों को आवश्यकता है।
5. **आन्तरिक शान्ति की स्थापना**—राज्य के द्वारा आन्तरिक शान्ति की स्थापना के लिए पुलिस की व्यवस्था की जाती है। पुलिस के माध्यम से सरकार देश में आन्तरिक शान्ति रखती है। आन्तरिक शान्ति के कारण ही नागरिकों को व्यक्तित्व के विकास तथा ज्ञान-विज्ञान के विकास का अवसर मिलता है। इस दृष्टि से भी व्यक्ति के लिए राज्य एक अनिवार्य संस्था है।
6. **राज्य द्वारा बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा**—सैन्य शक्ति के द्वारा राज्य अपने देश को विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करता है। इससे देश को बाह्य आक्रमणों का भय नहीं रहता है। इसके परिणामस्वरूप देश के नागरिकों को कला, विज्ञान व साहित्य में उन्नति करने का पर्याप्त अवसर मिलता है।

प्र.7. नागरिकों के नैतिक कर्त्तव्य लिखिए।
अथवा नागरिकों के नैतिक कर्त्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

नागरिकों के नैतिक कर्त्तव्य
(Moral Duties of Citizens)

नैतिक कर्त्तव्य उसे कहते हैं, जिसका सम्बन्ध व्यक्ति की नैतिक भावना, अन्त:करण तथा उचित कार्य की प्रवृत्ति से होता है। वस्तुत: नैतिक कर्त्तव्य का सम्बन्ध व्यक्ति के अन्त:करण से होता है। सामान्यतया इनका पालन करने पर राज्य की ओर से किसी भी प्रकार के दण्ड का प्रावधान नहीं है।

नैतिक कर्त्तव्य के अन्तर्गत निम्नलिखित कर्त्तव्य सम्मिलित किये गये हैं—

1. **मानवता के प्रति कर्त्तव्य**—इसके अन्तर्गत दो प्रमुख कर्त्तव्य सम्मिलित किये गये हैं—
   (i) विश्व-शान्ति की स्थापना में वांछित योगदान देना।
   (ii) समस्त मानव-समाज के हित के लिए कार्य करना चाहिए।
2. **समाज के प्रति कर्त्तव्य**—समाज के सदस्य के रूप में भी मनुष्य के अनेक कर्त्तव्य हैं, क्योंकि समाज व्यक्ति के जीवन का रक्षक है तथा उसकी भौतिक-अभौतिक सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करना, विभिन्न संघों और समुदायों के प्रति अपने दायित्वों का पालन करना, अधिकारों का समुचित उपभोग करना तथा समाज के दीन-दु:खियों व असहायों की सहायता करना आदि सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रमुख उदाहरण हैं इन कर्त्तव्यों का पालन करके ही व्यक्ति समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकता है।
3. **ग्राम, नगर तथा राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य**—परिवार के बाद नागरिक के अपने ग्राम, नगर तथा राष्ट्र के प्रति अनेक कर्त्तव्य होते हैं। इन कर्त्तव्यों के अन्तर्गत नागरिक को शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा सफाई की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार के कर्त्तव्यों के पालन के लिए प्रत्येक नागरिक में सार्वजनिक सेवा की भावना होना आवश्यक है।
4. **परिवार के प्रति कर्त्तव्य**—परिवार मनुष्य के सामाजिक जीवन की आधारशिला है; अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार के प्रति कर्त्तव्य-पालन का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए। उसे अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति सद्भावना, सहानुभूति, प्रेम व सहयोग का भाव प्रदर्शित करना चाहिए।
5. **अपने प्रति कर्त्तव्य**—अपने प्रति प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह अपने जीवन की सुरक्षा कर अपना सर्वांगीण विकास करे। इस कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए व्यक्ति को अपने शारीरिक और मानसिक विकास की दिशा में निरन्तर सचेष्ट रहकर अपनी आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक प्रगति के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए।

प्र.8. शिक्षा और अधिकार अधिनियम में वित्त पोषण की क्या व्यवस्था है?

उत्तर शिक्षा के अधिकार के लिए वित्तीय उत्तरदायित्व में केन्द्र और राज्य सरकार साझेदारी होंगे। केन्द्र सरकार व्यय का अनुमानित बजट तैयार करेगी। राज्य सरकार को इस राशि का एक निश्चित प्रतिशत भाग उपलब्ध कराया जाएगा। शिक्षा के अधिकार के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से राज्य सरकार को अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराने पर विचार करने हेतु केन्द्र सरकार वित्त आयोग से अनुरोध कर सकती है।

कार्यान्वयन के लिए आवश्यक अवशिष्ट राशि को उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व राज्य सरकार में निहित होगा। इसमें एक अधिकरण अन्तराल होगा जिसे सभ्य समाज (सिविल सोसाइटी) के साझेदारों, विकासशील एजेन्सियों, निगमित संगठनों और देश के नागरिकों के द्वारा सहयोग किया जाना आवश्यक होगा।

प्र.9. विद्यालयों में प्रभावी अधिगम हेतु शिक्षा के अधिकार अधिनियम में क्या व्यवस्था की गई है?

उत्तर शिक्षा के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत सभी विद्यालय प्रभावशाली अधिगम व वातावरण हेतु आधारभूत संरचना और अध्यापक मानदण्डों का पालन करेंगे। प्राथमिक स्तर पर प्रत्येक 60 छात्रों के लिए दो प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था होनी चाहिए। अध्यापकों के लिए विद्यालय में नियमित रूप से और समय पर उपस्थित होना, पाठ्यचर्या को समय से पूरा करना, अधिगम क्षमता का आकलन करना और माता-पिता-अध्यापक बैठकें नियमित रूप से करना आवश्यक होगा। अध्यापकों की संख्या छात्रों की संख्या पर आधारित होगी न कि कक्षा के आधार पर।

राज्य अध्यापकों की पर्याप्त सहायता सुनिश्चित करेगा जिनसे बच्चों का अधिगम परिणाम उन्नत हो सके। समुदाय और सिविल सोसाइटी समानतायुक्त विद्यालय गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु विद्यालय प्रबन्धन समिति के सहयोग से महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेगा।

प्र.10. नागरिक चार्टर से क्या आशय है?

उत्तर नागरिक चार्टर लोगों की सहभागिता के लिए एजेन्सी रहित (Non-agency) युक्ति है। यह एक दस्तावेज है, जो सार्वजनिक संगठनों द्वारा अपने उपभोक्ताओं/नागरिकों के लिए प्रतिबद्धता केन्द्रित करने का एक अच्छा प्रयास है। नागरिक चार्टर पहल सरकारी विभागों द्वारा एक लिखित घोषणा के रूप में है जिसका शीर्ष वाक्य है—'उपभोक्ता सर्वप्रथम' (Putting People First')। इसमें सेवा वितरण के मानकों व प्रतिबद्धताओं को और इसका अनुपालन न होने की स्थिति में शिकायत-निवारण और निदानात्मक कार्यवाहियाँ दोनों को सूचीबद्ध किया गया है। एक चार्टर के रूप में मानकों के सुस्पष्ट विवरण का अंगीकरण भी इसमें सम्मिलित है। यह सार्वजनिक संगठनों द्वारा अपने उपभोक्ताओं को गुणवत्तापूर्ण सेवाएँ प्रदान करने की इच्छा की अभिव्यक्ति है। सरकारी संगठनों की वास्तविक कार्यवाहियों के लिए नागरिकों की अनुक्रियाओं को सराहना और सार्वजनिक सेवाओं को सक्षम व प्रभावी बनाने का विचार इसमें अन्तर्निहित है।

प्र.11. नागरिक घोषणा-पत्र (Citizen Charter) के मूलभूत उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

नागरिक घोषणा-पत्र के उद्देश्य
(Objectives of Citizen Charter)

नागरिक घोषणा-पत्र का मूलभूत उद्देश्य लोक-सेवा के सन्दर्भ में नागरिकों को सशक्त बनाना है। नागरिक घोषणा-पत्र मूलत: छह सिद्धान्तों पर आधारित होता है—

1. **गुणवत्ता**—सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार।
2. **चयन**—जहाँ तक सम्भव हो चयन का अवसर देना।
3. **मानक**—यदि सेवा मानक पूरे नहीं होते तो नागरिक की अपेक्षा व कार्यवाही क्या हो इसे स्पष्ट करना।
4. **मूल्य**—आवश्यक मूल्यों को अपनाना।
5. **जवाबदेही**—व्यक्तियों व संस्थाओं के लिए जवाबदेही।
6. **पारदर्शिता**—नियम क्रियाविधि/स्कीम/शिकायत के सन्दर्भ में पारदर्शिता सुनिश्चित करना।

सामान्यत: नागरिक घोषणा-पत्र जनसेवाओं से सम्बन्धित विभागों के लिए जारी किये जाते हैं एवं इनका उद्देश्य जनसेवाओं को त्वरित बनाना है। सामान्य अर्थों में नागरिक घोषण पत्र का आशय किसी संगठन द्वारा जनहित में जारी किये गये संक्षिप्त दस्तावेज से है। इसमें प्रशासनिक पारदर्शिता, कार्यकुशलता, संवेदनशीलता एवं जवाबदेही जैसे निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संगठन की कार्यप्रणाली, कार्य की प्रक्रिया, कार्य निष्पादन की निश्चित अवधि के साथ जनता के अधिकारों सहित उनकी शिकायत निवारण की प्रणाली वर्णित कर दी जाती है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. गीता के निष्काम कर्म करने के अधिकार सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

उत्तर

कर्म का अधिकार सिद्धान्त
(Karma Theory of Rights)

गीता भारतीय दर्शन की आधारशिला है। हिन्दू शास्त्रों में गीता का सर्वप्रथम स्थान है। गीता कर्मयोग का प्रधान ग्रन्थ कहा गया है। कर्मयोग दो शब्दों के मेल से बना है कर्म और योग। कर्म का अर्थ कर्त्तव्य और योग का अर्थ आत्मा का परमात्मा से मिलन है अर्थात् मनुष्य को ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे उसका मिलन ईश्वर से हो जाए। वास्तव में कोई भी मनुष्य कर्म के बिना नहीं रह सकता। यदि कर्म न हो तो न समाज शेष रहेगा न ही व्यक्ति। गीता स्वार्थ से रहित कर्मों को करने के लिए प्रेरित करती है। कर्म के लिए गीता में धर्म का पालन आवश्यक माना गया है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। **गीता-2/47**

अर्थात् तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु न हो तथा तेरी अकर्मण्यता में आसक्ति भी न हो। कर्म करने का अधिकार ही कर्म का अधिकार सिद्धान्त है। कर्म फल की आकांक्षा को न रखना और अकर्म मान्यता से बचने पर निष्काम कर्मवाद बनता है। अत: निष्काम कर्म से ही संसार की गति बनी रहेगी और विश्व में सुख, शान्ति और समृद्धि की स्थापना हो सकती है।

कर्म अधिकार का परिणाम (Consequences of Karma Right)

कर्मवाद का सिद्धान्त या कर्म का अधिकार सिद्धान्त भारतीय दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त है। भारतीय विचारधारा में इसे ईश्वरवाद एवं आत्मवाद से भी अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। कर्मवाद के दो अंग हैं—कर्म क्रिया रूप में (यह भी अधिकार के अन्तर्गत आता है) और कर्मवाद सिद्धान्त रूप में। चार्वाक को छोड़कर भारत के सभी दर्शन चाहे वह वेद-विरोधी ही क्यों न हों, कर्म के अधिकार को मान्यता प्रदान करते हैं। ईश्वरवाद को नास्तिक नहीं मानते, कुछ आस्तिक भी नहीं मानते, परन्तु कर्म के अधिकार को सभी मानते हैं। कर्म अधिकार के सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में भारतीय दर्शन की यह मान्यता निहित है कि विश्व में एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था है। कर्म अधिकार के अनुसार मनुष्य जो कर्म अधिकार करता है, उसका फल भी वही भोगता है।

जहाँ कर्त्तव्य वहाँ अधिकार (Where Duty There Right)

19वीं शताब्दी के पाश्चात्य दार्शनिक ब्रैडले ने भी माना है कि 'मेरा स्थान और उसका कर्त्तव्य' निर्धारित है, जिसे अपनाना अनिवार्य है, जहाँ कर्त्तव्य है वहाँ अधिकार भी है। जब हम अकर्मण्य नहीं हो सकते तो कर्म को किसी आदर्श के अनुसार करना चाहिए, बिना आदर्श के नहीं। यह आदर्श निष्काम कर्म का है, सकाम कर्म का नहीं। निष्काम कर्म के दो अंग हैं—ममता का त्याग और तृष्णा का त्याग। निष्काम का अर्थ कुछ लोग काम्य कर्मों का त्याग समझते हैं, जैसे—स्त्री, पुत्र, धन आदि के लिए यज्ञ, दान, तप आदि काम्य कर्मों का त्याग। इन काम्य कर्मों को ही अधिकार की श्रेणी में भी गिन लिया जाता है जबकि इनका त्याग काम्य कर्म का त्याग है।

अनासक्त कर्म ही बन्धन का बाधक एवं मोक्ष का साधक है। आसक्ति ही बन्धन में हेतु है जिसमें आसक्ति का अभाव है वह पुरुष कर्म करता हुआ भी जल में कमल के पत्ते के समान से लिप्त नहीं होता—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ **गीता-5/10**

अनासक्त कर्म करने वाला योगी ही परमात्मा को प्राप्त करता है। यही कर्मयोग का लक्ष्य है। अनासक्त कर्म ही परमात्मा तक पहुँचने का सोपान या मार्ग है। मानव को सर्वदा अधिकार समझकर कर्म करते रहना चाहिए परन्तु अनासक्त भाव से। अनासक्त या निष्काम कर्म करने से वह संसार-बन्धन को काट डालता है। जन्म और मरण के चक्र को पार कर जाता है तथा परमात्मा से मिल जाता है। अतः निष्काम कर्म के द्वारा मनुष्य को परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार कर्मयोग ईश्वर से मिलने का साधन या मार्ग है। कर्मयोग का निष्काम होना कर्म का अधिकारिक सहज मार्ग है।

निष्काम कर्मयोग में प्रवृत्ति और निवृत्ति दो परस्पर विरोधी आदर्शों का समन्वय होता है। प्रवृत्ति का आदर्श कर्म का आदर्श है और निवृत्ति का आदर्श वैराग्य का आदर्श है। गीता के निष्काम कर्मयोग में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का भी समन्वय होता है। गीता प्रत्येक व्यक्ति से कर्म सम्पादन का आग्रह करती है साथ-ही-साथ कर्म-फल में आसक्ति का भाव न रखने की बात भी कहती है।

प्र.2. अधिकार की परिभाषा देते हुए उसका वर्गीकरण कीजिए।
***अथवा* अधिकार से क्या तात्पर्य है? अधिकार के प्रकार लिखिए।**

उत्तर

अधिकार की परिभाषाएँ
(Definitions of Right)

अधिकार मुख्यतया हकदारी अथवा ऐसा दावा है जिसका औचित्य सिद्ध हो। अधिकार की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

ऑस्टिन के अनुसार, "अधिकार व्यक्ति की वह क्षमता है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों से कुछ विशेष प्रकार के कार्य करा लेता है।"

ग्रीन के अनुसार, "अधिकार मानव-जीवन की वे शक्तियाँ हैं, जो नैतिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति को अपना कार्य पूरा करने के लिए आवश्यक हैं।"

बोसांके के अनुसार, "अधिकार वह माँग है, जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य क्रियान्वित करता है।"

हॉलैण्ड के अनुसार, "अधिकार किसी व्यक्ति की वह क्षमता है, जिससे वह अपने बल पर नहीं अपितु समाज के बल से दूसरों के कार्यों को प्रभावित कर सकता है।"

प्रो० लॉस्की के अनुसार, "अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं, जिनके अभाव में सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने उच्चतम स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता।"

गार्नर के अनुसार, "नैतिक प्राणी होने के नाते मनुष्य के व्यवसाय की पूर्ति के लिए आवश्यक शक्तियों को अधिकार कहा जाता है।"

श्रीनिवास शास्त्री के अनुसार, "अधिकार समुदाय के कानून द्वारा स्वीकृत वह व्यवस्था, नियम या रीति है, जो नागरिक के सर्वोच्च नैतिक कल्याण में सहायक हो।"

डॉ० बेनीप्रसाद के अनुसार, "अधिकार वे सामाजिक दशाएँ हैं, जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि—

1. अधिकारों को समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।
2. अधिकार व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक तत्त्व हैं।
3. अधिकारों द्वारा ही व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति सम्भव है।
4. अधिकार सामाजिक दशाएँ हैं।

अधिकारों का वर्गीकरण (रूप *अथवा* प्रकार)
[(Classification of Rights (Form and Types)

साधारण रूप से अधिकारों को निम्नलिखित रूपों अथवा प्रकारों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है—

1. **नैतिक अधिकार**—ये वे अधिकार हैं, जिनका सम्बन्ध मानव के नैतिक आचरण से होता है। इनका स्वरूप अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्य-पालन में अधिक निहित होता है।
2. **प्राकृतिक अधिकार**—प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों को प्राप्त थे। परन्तु ग्रीन ने प्राकृतिक अधिकारों को आदर्श अधिकारों के रूप में माना है। उसके अनुसार, ये वे अधिकार हैं, जो व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आवश्यक हैं और जिनकी प्राप्ति समाज में ही सम्भव है।
3. **कानूनी अधिकार**—कानूनी अधिकार वे अधिकार हैं, जिनकी व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती है और जिनका उल्लंघन कानून द्वारा दण्डनीय होता है। **लीकॉक** के अनुसार, "कानूनी अधिकार वे विशेषाधिकार हैं, जो एक नागरिक को अन्य नागरिकों के विरुद्ध प्राप्त होते हैं तथा जो राज्य की सर्वोच्च शक्ति द्वारा प्रदान किये जाते हैं और (उसी के द्वारा) रक्षित होते हैं।"

कानूनी अधिकार दो प्रकार के होते हैं—

(i) सामाजिक *या* नागरिक अधिकार (Social or Civil Rights) तथा
(ii) राजनीतिक अधिकार (Political Rights)।

प्र.3. सामाजिक अधिकार एवं राजनीतिक अधिकारों की विवेचना कीजिए।

उत्तर

सामाजिक अधिकार
(Social Rights)

सामाजिक अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य होने के कारण प्राप्त होते हैं। प्राय: राज्य में रहने वाले सभी व्यक्तियों को ये अधिकार सुलभ होते हैं। प्रमुख सामाजिक अधिकार निम्नलिखित हैं—

1. **विचारों को व्यक्त करने का अधिकार**—प्रत्येक व्यक्ति को लेखन, भाषण, अभिव्यक्ति इत्यादि का अधिकार होना चाहिए परन्तु व्यक्ति को भाषण और लेखन इत्यादि के द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार उस सीमा तक होना चाहिए, जब तक उससे सामाजिक अहित न होता हो। लोकतन्त्र में इस अधिकार का अधिक महत्त्व है। **मिल्टन** के अनुसार—"मुझे अपने अन्त:करण के अनुसार जानने की, बोलने की और तर्क करने की स्वतन्त्रता राज्य स्वतन्त्रताओं से अधिक प्यारी है।"
2. **सम्पत्ति का अधिकार**—सम्पत्ति के अधिकार का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को धन कमाने, इकट्ठा करने एवं खर्च करने का अधिकार होना चाहिए। सम्पत्ति व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। इससे उसमें सुरक्षा और स्वावलम्बन की भावना पैदा होती है तथा वह सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेता है। अरस्तू ने सम्पत्ति को मनुष्य के विकास के लिए अनिवार्य बताया था।
3. **शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार**—शिक्षा राष्ट्रीय जीवन की आधारशिला है। व्यक्ति का विकास, समाज का विकास एवं राष्ट्र का विकास सब कुछ शिक्षा पर ही निर्भर रहता है। शिक्षा के अभाव में कोई मनुष्य उत्तम नागरिक नहीं बन सकता। **अरस्तू** का तो यह कहना था कि नागरिक बनने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य है। आज के लोकतन्त्रात्मक युग में तो यह अधिकार अत्यन्त अनिवार्य है। संस्कृति के अधिकार का अर्थ है कि व्यक्ति को अपनी भाषा, लिपि, साहित्य, कला एवं परम्पराओं को सुरक्षित रखने की सुविधा प्राप्त हो।

TOUCH 'n PASS

4. **धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार**—इस अधिकार का अर्थ है कि मनुष्य को किसी धर्म के मानने तथा प्रचार करने का अधिकार है, उसकी इच्छा के विरुद्ध उस पर कोई धर्म नहीं लादा जा सकता है। इस प्रसंग में **रूसो** का कहना था कि "Tolerance should be given to all religions, that tolerate others so long as their dogmas contain nothing contrary to the duties of citizenship."
5. **जीवन का अधिकार**—प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का अधिकार प्राप्त रहता है। यह अधिकार मनुष्य के अस्तित्व से सम्बन्धित है। यदि मनुष्य को जीवन का अधिकार न हो, उसके जीवन की सुरक्षा न हो तो उसका सामाजिक जीवन दूभर हो जायेगा। जीवन के अधिकार में यह बात भी शामिल है कि कोई व्यक्ति स्वयं अपना जीवन समाप्त नहीं कर सकता। वास्तव में आत्महत्या करना दण्डनीय अपराध है।
6. **काम या रोजगार का अधिकार**—प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने के लिए भोजन, वस्त्र, मकान इत्यादि अनेक साधनों की आवश्यकता होती है। इन साधनों को मनुष्य काम करके ही प्राप्त कर सकता है। अत: वर्तमान युग में यह आवश्यक समझा जाता है। प्रत्येक नागरिक को राज्य की ओर से उसकी योग्यता और शक्ति के अनुसार काम दिया जाये और उसे उसके परिश्रम के अनुरूप वेतन मिले। समाजवादी देशों में इस अधिकार का विशेष महत्त्व है। हमारे देश में नागरिकों को अब तक रोजगार का अधिकार कानूनी अधिकार के रूप में नहीं प्रदान किया जा सका है।
7. **न्याय का अधिकार**—न्याय के अधिकार से आशय यह है कि न्यायालयों में धनी, निर्धन, साधारण नागरिक और उच्च अधिकारी में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। कानून के सामने बड़े और छोटे आदमी में कोई भेद नहीं होना चाहिए। ऐसा तभी हो सकता है, जबकि देश में कानून का शासन हो। न्याय के अधिकार की स्थापना के लिए यह भी आवश्यक है कि जनता को सस्ता और शीघ्र न्याय मिले।
8. **कुटुम्ब का अधिकार**—कुटुम्ब सामाजिक जीवन की प्रथम इकाई तथा नागरिकता का प्रथम विद्यालय है। इस अधिकार के अन्तर्गत विवाह करने, यौन-सम्बन्धों की शुद्धता कायम रखने, संतान व माता-पिता के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उत्तराधिकार के अधिकार सम्मिलित हैं। प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप या प्रतिबन्ध के अपने कौटुम्बिक जीवन का सुख भोग सके, प्रत्येक कुटुम्ब अपनी सुख-सुविधा के लिए आवश्यक कार्यों को कर सके।
9. **समुदाय बनाने का अधिकार**—इस अधिकार के अन्तर्गत व्यक्ति को समान विचारधारा वाले लोगों के साथ मिलकर संगठन के सृजन की स्वतन्त्रता होनी चाहिए क्योंकि बिना संगठन के समाज की उन्नति सम्भव ही नहीं है। समुदाय बनाने और उनका सदस्य बनने का अधिकार दिया जाता है। इस अधिकार के अभाव में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सम्यक् विकास करने में तो असमर्थ होता ही है, उसकी स्वतन्त्रता भी खतरे में पड़ सकती है। यही कारण है कि प्राय: सभी देशों में नागरिकों को ये अधिकार सुलभ होते हैं। विभिन्न राजनीतिक दल, विविध प्रकार के समुदाय इसी अधिकार के आधार पर जन्म लेते हैं।

राजनीतिक अधिकार
(Political Rights)

राजनीतिक अधिकार नागरिक को देश के शासन में भाग लेने का अवसर देते हैं। ये निम्नलिखित हैं—

1. **आवेदन-पत्र देने का अधिकार**—प्राय: प्रत्येक सभ्य एवं लोकतन्त्रात्मक राज्य में नागरिकों को आवेदन-पत्र देने का अधिकार प्राप्त होता है। इस आवेदन-पत्र के द्वारा लोग सरकार का ध्यान अपने कष्टों की ओर आकृष्ट करते हैं। ऐसे आवेदन-पत्र की आवश्यकता प्राय: उस समय होती है जबकि सरकार जनता के कष्टों या कठिनाइयों की निरन्तर उपेक्षा करती जाती है। यह अधिकार सरकार पर अंकुश रखता है और इसके कारण सरकार जनता के कष्टों की उपेक्षा नहीं कर सकती।
2. **सरकार का विरोध करने का अधिकार**—सभी लोकतान्त्रिक राज्यों में नागरिक को सरकार का विरोध करने का अधिकार प्राप्त रहता है। यदि लोग सरकार के कार्यों एवं नीतियों से सन्तुष्ट नहीं हैं तो वे उसकी खुलकर आलोचना कर सकते हैं। निर्वाचनों में सरकार का विरोध करें और उसको पराजित करने का प्रयत्न करें परन्तु सरकार का विरोध केवल संवैधानिक तरीकों से ही किया जा सकता है। कोई भी राज्य अपने नागरिकों को यह अधिकार नहीं देता कि वे हिंसात्मक तरीकों से सरकार का विरोध करें।

3. **सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार**—इस अधिकार के अन्तर्गत सभी नागरिकों को योग्यता रखने पर सरकारी पदों पर नियुक्त होने का अधिकार प्राप्त रहता है। किसी भी नागरिक को धर्म, जाति, लिंग अथवा सम्पत्ति के आधार पर कोई पद पाने से वंचित नहीं किया जा सकता। इसी कारण प्रायः प्रत्येक लोकतन्त्रात्मक राज्य प्रतियोगिता-परीक्षाओं द्वारा नौकरियों में भर्ती का प्रबन्ध करता है।
4. **चुनाव लड़ने का अधिकार**—मतदान के साथ ही लोकतन्त्र में प्रत्येक नागरिक को यह भी अधिकार होता है कि वह स्वयं भी प्रतिनिधि संस्थानों की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ सके। किसी व्यक्ति को रंग, जाति, लिंग अथवा सम्पत्ति के आधार पर इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। हाँ, यदि कोई व्यक्ति पागल, दिवालिया, विदेशी या वे योग्यताएँ नहीं रखता जो कि किसी उम्मीदवार में होनी चाहिए तो अवश्य उसे इस अधिकार से वंचित किया जा सकता है।
5. **मतदान का अधिकार**—लोकतन्त्र में यह अधिकार राज्य के समस्त वयस्क नागरिकों को प्रतिनिधि संस्थानों के लिए सदस्यों को चुनने का अधिकार दिया जाता है। नागरिकों का यह अधिकार देश के भाग्य का फैसला करता है। यदि नागरिकों का मत देश के योग्य, सक्षम, ईमानदार, कर्मठ, समाजसेवी तथा देशभक्त लोगों को प्राप्त होता है तो देश निरन्तर प्रगति-पथ पर बढ़ता रहेगा। इसलिए प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि सदैव अपना मत (Vote) योग्य व्यक्ति को ही दें। आजकल लोकतन्त्रात्मक देशों के सब नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त रहता है। केवल पागल, दिवालिया लोग ही इस अधिकार से वंचित रहते हैं।

प्र.4. अधिकारों के ऐतिहासिक सिद्धान्त का वर्णन कीजिए तथा इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

उत्तर

अधिकारों का ऐतिहासिक सिद्धान्त
(Historical Theory of Rights)

इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकारों की उत्पत्ति प्राचीन रीति-रिवाजों के परिणामस्वरूप होती है। लम्बे समय से चले आ रहे रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ, जिनके हम अभ्यस्त हो जाते हैं, अधिकार बन जाते हैं। **रिची** के शब्दों में, "जिन अधिकारों के विषय में लोग सोचते हैं कि वे उन्हें मिलने ही चाहिए, वे ही अधिकार होते हैं; जिनके वे अभ्यस्त होते हैं या जिनके विषय में (गलत या सही) यह धारणा होती है कि वे उन्हें कभी प्राप्त थे। रीति-रिवाज प्राचीन कानून हैं।"

अधिकारों का ऐतिहासिक सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि अधिकार ऐतिहासिक रीति-रिवाजों के रूप में विकसित होते हैं, जिन्हें समाज स्वीकार करता है। इतिहास अधिकारों का स्रोत है और परम्पराएँ अधिकारों की आधारशिला। अतीत में प्रचलित परम्पराएँ ही मानवाधिकारों के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती हैं। यही कारण है कि इतिहास को अधिकारों का जन्मदाता कहा जाता है। अनेक देशों में नागरिक को प्राप्त अधिकार इस बात का प्रमाण है कि परम्पराएँ ही अधिकारों का रूप धारण कर लेती हैं।

आलोचनात्मक व्याख्या (Critical Interpretation)

अधिकारों के ऐतिहासिक सिद्धान्त की आलोचना निम्नलिखित प्रकार से की गई है—

1. **सभी अधिकार परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों के परिणाम नहीं**—अधिकारों का आधार केवल रीति-रिवाज तथा परम्पराएँ नहीं हो सकतीं क्योंकि कुछ परम्पराएँ तथा रीति-रिवाज समाज के कल्याण में बाधक होते हैं। केवल परम्पराओं और रीति-रिवाजों को ही अधिकारों का एकमात्र स्रोत नहीं कहा जा सकता है। दास प्रथा, सती प्रथा आदि कुरीतियों का बहुत समय तक रिवाज रहा, परन्तु उन्हें अधिकार नहीं कहा गया। वर्तमान समय में जब मनुष्य की नैतिक भावना विकसित हो चुकी है, अधिकारों का अस्तित्व प्रथाओं पर निर्भर नहीं रहा है।
2. **सभी रीति-रिवाज समाज के हित में नहीं होते**—अधिकारों के ऐतिहासिक सिद्धान्तों को मानकर यदि बुराई युक्त प्रथाएँ अधिकार के रूप में स्वीकार कर भी ली जाएँ तो भी ये मानव कल्याण के लिए सार्थक सिद्ध नहीं हो सकती हैं। इतिहास केवल भविष्य के लिए हमारा मार्गदर्शन नहीं कर सकता है। **प्रो० हॉकिंग्स** के शब्दों में, "यह कहना कि रीति-रिवाज हमेशा ठीक ही होते हैं, उतना ही मूर्खतापूर्ण है जितना यह कहना कि विधि किसी भी चीज को उचित बना सकती है।"
3. **सुधारों की सम्भावना का अन्त**—यह सिद्धान्त अवैज्ञानिक है क्योंकि अधिकारों के जन्म के अनेक स्रोत होते हैं, केवल इतिहास ही नहीं। इतिहास और रीति-रिवाजों को अधिकारों का आधार बनाने से न विकास होगा और न परिवर्तन। इससे समाज सुधार का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा तथा व्यक्ति दूषित रीति-रिवाजों का भी विरोध करने की स्थिति में नहीं रहेंगे।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति के अनेक अधिकार रीति-रिवाजों और परम्पराओं पर आधारित होते हैं।

प्र.5. अधिकारों के सामाजिक कल्याण सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

उत्तर

अधिकारों का सामाजिक कल्याण सिद्धान्त (Social Welfare Theory of Rights)

इस सिद्धान्त का प्रमुख लक्ष्य उपयोगिता या समाज कल्याण है। कानून, रीति-रिवाज, प्राकृतिक अधिकार आदि सभी धारणाओं को सामाजिक कल्याण सिद्धान्त की तुलना में अधिक महत्त्व प्रदान नहीं करना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को अधिकार इसलिए प्राप्त होते हैं कि उनके द्वारा समाज का कल्याण होता है अथवा अधिकारों का अस्तित्व समाज-कल्याण पर आधारित होता है। इस प्रकार व्यक्ति केवल उन अधिकारों का उपभोग कर सकता है जो समाज हित में तथा लोक-कल्याणकारी हों।

बेन्थम तथा **मिल** आदि उपयोगितावादियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। **लॉस्की** ने भी उपयोगिता को अधिकार की कसौटी माना है। उनके शब्दों में, "हमारे अधिकार समाज से स्वतन्त्र नहीं वरन् उसमें निहित होते हैं।" पुनश्च, "लोक-कल्याण के विरुद्ध मेरे अधिकार नहीं हो सकते हैं क्योंकि ऐसा करना मुझे उस कल्याण के विरुद्ध अधिकार देना है, जिसमें मेरा कल्याण घनिष्ठ तथा अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।" इस प्रकार अधिकार अनिवार्य रूप से लोक-कल्याण से सम्बन्धित होते हैं और व्यक्ति को वे ही अधिकार प्राप्त होते हैं जिनका लक्ष्य सामाजिक कल्याण होता है।

मान्यताएँ—इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. कानून, रीति-रिवाज और अधिकार सभी का उद्देश्य समाज कल्याण है।
2. अधिकारों का अस्तित्व समाज-कल्याण पर आधारित है।
3. व्यक्ति केवल उन्हीं अधिकारों का प्रयोग कर सकता है जो समाज के हित में हों।
4. अधिकार समाज की देन हैं, प्रकृति की नहीं।

आलोचना—इस सिद्धान्त की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती हैं—

1. **व्यक्तिगत कल्याण और समाज-कल्याण में संघर्ष**—व्यक्तिगत कल्याण और सामाजिक कल्याण में संघर्ष भी हो सकता है। व्यक्ति के अधिकारों के अतिक्रमण के पश्चात प्राप्त सामाजिक हित निरर्थक होता है। यह कहना उचित नहीं है कि व्यक्ति के अधिकारों का बलिदान समाज के लिए कर देना चाहिए। इसका अर्थ व्यक्ति के जीवन का समाज के हित के नाम पर बलिदान हो सकता है। इस विचार को **वाइल्ड** इन शब्दों में व्यक्त करते हैं, "यदि अधिकारों को देने में सामाजिक कल्याण का ध्यान रखा जाएगा तो यह सम्भव है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट हो जाए और अपने अधिकारों की माँग करने का अवसर ही न मिले।"
2. **समाज-कल्याण की धारण अस्पष्ट**—'समाज-कल्याण शब्द स्वयं एक अस्पष्ट शब्द है। साधारणतया इसका अर्थ अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख, बहुसंख्यकों का सुख अथवा सामान्य सुख हो सकता है, किन्तु इन सबका निश्चय करना कठिन कार्य है। अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की मात्रा निश्चित नहीं की जा सकती है। फिर सुख एक आन्तरिक अनुभूति है, जिसे बाहर से प्रदान नहीं कर सकते हैं। बहुसंख्यकों का सुख अल्पसंख्यकों को हानि पहुँचा सकता है। इस प्रकार 'समाज-कल्याण' शब्द का सही अर्थ स्पष्ट करना कठिन है।
   इस सिद्धान्त में यह सत्य निहित है कि अधिकारों का अस्तित्व समाज के हित के लिए ही होता है और इसका उपयोग समाज के हित में ही किया जाना चाहिए।

प्र.6. अधिकार जनसाधारण पर क्या जिम्मेदारियाँ डालते हैं? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर अधिकार न केवल राज्य पर यह जिम्मेदारी डालते हैं कि वह विशिष्ट प्रकार से काम करे बल्कि जनसाधारण पर भी जिम्मेदारी डालते हैं। उदाहरण के लिए, टिकाऊ विकास का मामला लें। हमारे अधिकार हमें याद दिलाते हैं कि इसके लिए न केवल राज्य को कुछ कदम उठाने हैं, बल्कि हमें भी इस दिशा में प्रयास करने हैं। अधिकार हमें बाध्य करते हैं कि हम अपनी निजी आवश्यकताओं और हितों के विषय में ही न सोचें, वरन कुछ ऐसी चीजों की भी रक्षा करें, जो हम सबके लिए लाभदायक हैं। ओजोन परत की रक्षा करना, वायु और जल प्रदूषण कम-से-कम करना, नये वृक्ष लगाकर और जंगलों की कटाई रोककर हरियाली बनाये रखना, पारिस्थितिकीय सन्तुलन बनाये रखना आदि ऐसी चीजें हैं, जो हम सबके लिए अनिवार्य हैं। ये जनसाधारण के लाभ की बातें हैं, जिनका पालन हमें अपनी और भावी पीढ़ियों की रक्षा के लिए भी अवश्य करना चाहिए। आने वाली पीढ़ियों को भी सुरक्षित और स्वच्छ दुनिया प्राप्त करने का अधिकार है, इसके बिना वे बेहतर जीवन नहीं जी सकतीं।

अधिकार यह भी जिम्मेदारी डालते हैं कि हम अन्य लोगों के अधिकारों का भी सम्मान करें। टकराव, की स्थिति में जनसाधारण को अधिकारों को सन्तुलित करना होता है। उदाहरणार्थ, अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार किसी को भी तस्वीर लेने की

अनुमति देता है, लेकिन अगर कोई व्यक्ति अपने घर में नहाते हुए किसी व्यक्ति की उसकी अनुमति के बिना तस्वीर ले ले और उसे इण्टरनेट पर डाल दे, तो यह गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन होगा।

नागरिकों को अपने अधिकारों पर लगाये जाने वाले नियन्त्रणों के बारे में भी ध्यान देना होगा। अद्यतन एक विषय जिस पर बहुत अधिक चर्चा हो रही है। यह बढ़ते प्रतिबन्धों से सम्बन्धित है। ये प्रतिबन्ध कई सरकारें राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर लोगों की नागरिक स्वतन्त्रताओं पर लगा रही हैं। नागरिकों के अधिकारों और भलाई की रक्षा के लिए आवश्यक मानकर राष्ट्रीय सुरक्षा बनाये रखने का समर्थन किया जा सकता है। लेकिन किसी बिन्दु पर सुरक्षा के लिए आवश्यक मानकर थोपे गये प्रतिबन्ध अपने-आप में लोगों में अधिकारों के लिए खतरा बन जाएँ तो? क्या आतंकवादी बमबारी की धमकी का सामना करते राष्ट्र को अपने नागरिकों की आजादी छीन लेने की आज्ञा दी जा सकती है? क्या उसे केवल सन्देह के आधार पर किसी को गिरफ्तार करने की अनुमति मिलनी चाहिए? क्या उसे लोगों की चिट्ठियाँ देखने या फोन टेप करने की छूट दी जा सकती है? क्या सच कबूल करवाने के लिए उसे यातना देने का सहारा लेने दिया जाना चाहिए? ऐसी स्थितियों में यह सवाल उत्पन्न होता है कि सम्बद्ध व्यक्ति समाज के लिए खतरा तो नहीं पैदा कर रहा? गिरफ्तार लोगों को भी कानूनी सलाह प्राप्त करने की आज्ञा और दण्डाधिकारी या न्यायालय के समक्ष अपना पक्ष रखने का अवसर मिलना चाहिए। नागरिक स्वतन्त्रता में कटौती करने के प्रश्न पर अत्यन्त सावधान होने की आवश्यकता है क्योंकि इनका आसानी से दुरुपयोग किया जा सकता है। सरकारें निरंकुश हो सकती हैं और वे उन उद्देश्यों की ही जड़ खोद सकती हैं जिनके लिए सरकारें बनती हैं—यानी लोगों के कल्याण की। इसलिए यह मानते हुए भी कि अधिकार कभी सम्पूर्ण-सर्वोच्च नहीं हो सकते, हमें अपने एवं दूसरों के अधिकारों की रक्षा करने में चौकस रहने की आवश्यकता है क्योंकि ये लोकतान्त्रिक समाज की बुनियाद का निर्माण करते हैं।

प्र.7. अधिकारों के प्राकृतिक सिद्धान्त की आलोचना किन आधारों पर की जाती है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

अधिकारों के प्राकृतिक सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Natural Theory of Rights)

इस सिद्धान्त की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं—

1. **प्राकृतिक अधिकारों की सूची पर मतैक्य नहीं**—प्राकृतिक अधिकारों की प्राकृतिकता पर विचारक एकमत नहीं हैं। कुछ के लिए स्वतन्त्रता प्राकृतिक है, तो दूसरों के लिए समानता। कुछ दासता को प्राकृतिक मानते हैं तथा कुछ सम्पत्ति को। कुछ के लिए स्त्री-पुरुष की समानता प्राकृतिक है, तो दूसरों के लिए पुरुषों की श्रेष्ठता प्राकृतिक है। **लॉस्की** ने इस बात को लक्ष्य रखते हुए कहा है, "अधिकारों की कोई स्थायी अथवा अपरिवर्तित सूची निर्मित नहीं की जा सकती।"
2. **'प्राकृतिक' शब्द अस्पष्ट**—इस सिद्धान्त का 'प्राकृतिक' शब्द अनिश्चित, अपरिभाष्य तथा बहुल अर्थ रखने वाला है। **प्रो० रिची** के अनुसार, "प्राकृतिक शब्द के कई अर्थ हैं जैसे कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सृष्टि का वह भाग जहाँ मनुष्य नहीं हैं, आदर्श या पूर्ण लक्ष्य, अपूर्व, साधारण या औसत।" विचारक इस शब्द का अर्थ तथा प्रयोग अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हैं इसलिए इस सिद्धान्त का अर्थ भी अनिश्चित हो जाता है।
3. **राज्य एक कृत्रिम संस्था नहीं**—इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य और समाज मानव द्वारा निर्मित की गई कृत्रिम संस्थाएँ हैं जिन्होंने मनुष्य को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया है परन्तु सत्य यह है कि राज्य एक स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक संस्था है। वह निर्मित नहीं वरन् विकसित संस्था है। राज्य सही अर्थों में अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करता है अपितु उनका संरक्षण करता है।
4. **प्राकृतिक अधिकारों में पारस्परिक विरोध**—प्राकृतिक अधिकारों में भी परस्पर विरोध पाया जाता है। स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृत्व के अधिकार प्राकृतिक होने के कारण निरपेक्ष होने चाहिए। व्यवहार में यह निरपेक्षता सम्भव नहीं है क्योंकि निरपेक्ष अधिकार की मान्यता का अर्थ सबके लिए अनधिकार हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि हम सब व्यक्तियों की निरपेक्षता को स्वीकार करें तब यह पूर्ण स्वतन्त्रता आपस में टकराएगी। इस प्रकार सभी व्यक्ति निरपेक्ष रूप से समान नहीं हो सकते।
5. **अधिकारों की निरपेक्षता स्वीकार नहीं**—इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार व्यक्ति को प्रकृति की देन होने के कारण निरपेक्ष हैं तथा अधिकारों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण अथवा प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता, परन्तु प्रतिबन्धों के अभाव में स्वतन्त्रता उच्छृंखलता में परिवर्तित हो जाती है। अत: अधिकारों की निरपेक्षता मान्य नहीं है।

प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त की आलोचना से स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त इस रूप में मान्य नहीं है। वस्तुत: इस सिद्धान्त की मान्यता तभी हो सकती है जब हम इसका अर्थ लगाएँ कि प्राकृतिक अधिकार वे आदर्श तथा नैतिक अधिकार हैं, जिनसे मनुष्य को वंचित नहीं किया जा सकता।

प्र.8. "अधिकारों के अस्तित्व के लिए कर्त्तव्यों का होना आवश्यक है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

***अथवा* अधिकार तथा कर्त्तव्य की परिभाषा कीजिए एवं अधिकार और कर्त्तव्य एक सिक्के के दो पहलू हैं।" इस कथन को सिद्ध कीजिए।**

***अथवा* अधिकारों और कर्त्तव्यों का सम्बन्ध उदाहरण सहित समझाइए।**

उत्तर

अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का पारस्परिक सम्बन्ध
(Interrelationship of Rights and Duties)

अधिकार और कर्त्तव्य एक वस्तु के दो पहलू हैं। ये एक प्राण और दो शरीर के समान हैं। एक के समाप्त होते ही दूसरा स्वभावत: समाप्त हो जाता है। दोनों एक साथ चलते हैं। इनमें से एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकता। अधिकार और कर्त्तव्य एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। **डॉ० बेनीप्रसाद** के अनुसार—"अधिकार और कर्त्तव्य एक ही रथ के दो पहिये हैं। यदि व्यक्ति उन्हें अपने पक्ष से देखता है तो अधिकार है और इसी को दूसरों के पक्ष से देखता है तो वे कर्त्तव्य हो जाते हैं।" अधिकारों और कर्त्तव्यों के इस सम्बन्ध को हम निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं—

1. **कर्त्तव्य अधिकार पर अवलम्बित है**—जिस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए अधिकार कर्त्तव्यों पर निर्भर है, उसी प्रकार कर्त्तव्य भी अधिकारों पर निर्भर है। कर्त्तव्य-पालन के लिए यह परमावश्यक है कि मनुष्य कर्त्तव्य-पालन की आवश्यक क्षमता रखता हो। दूसरे शब्दों में मनुष्य को ऐसे अधिकार प्राप्त हों जिनके द्वारा वह अपना शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास कर सके। इस विकास के द्वारा ही यह कर्त्तव्य-पालन के योग्य बन सकता है। यदि उसे ऐसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जिनके द्वारा वह अपने को सब दृष्टियों से योग्य बना ले तो उसमें कर्त्तव्य-पालन की क्षमता नहीं आयेगी। जब वह कर्त्तव्य-पालन ही नहीं करेगा तो कर्त्तव्य का अस्तित्व ही कैसे रहेगा? ऐसी स्थिति में सारी व्यवस्था विशृंखलित हो जायेगी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्त्तव्यों का अस्तित्व अधिकारों पर ही अवलम्बित है।
2. **अधिकारों के अस्तित्व के लिए कर्त्तव्यों का होना अनिवार्य है**—अधिकारों का अस्तित्व कर्त्तव्यों पर अवलम्बित है। अधिकार वे दावे हैं, वे माँगें हैं, जिन्हें समाज ने कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार कर लिया है। किसी व्यक्ति का अधिकार तब तक अधिकार नहीं कहला सकता जब तक कि समाज उसे कर्त्तव्य मानकर अपनी स्वीकृति न दे। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति का अधिकार है कि उसका जीवन सुरक्षित रहे, अन्य मनुष्यों का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वे उसके जीवन पर आघात न करें। इसलिए एक विद्वान ने कहा है कि कर्त्तव्यों की दुनिया में ही अधिकारों का जन्म होता है। इस प्रकार अधिकार कर्त्तव्यों पर निर्भर है।
3. **सुखी सामाजिक जीवन के लिए दोनों आवश्यक हैं**—अधिकारों और कर्त्तव्यों का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य के सामाजिक जीवन को सुखी बनाना है। दोनों ही सुखी सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक हैं, दोनों व्यक्ति के चतुर्मुखी विकास के लिए आवश्यक हैं। दोनों के बिना व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास रुक जायेगा।
4. **समाज के एक वर्ग का अधिकार दूसरे का कर्त्तव्य होता है**—समाज में एक वर्ग का जो अधिकार है वही दूसरे का कर्त्तव्य है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार है तो दूसरे लोगों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपने उन कर्त्तव्यों का पालन करें जिनसे कि वह व्यक्ति अपने जीवित रहने के अधिकार का उपयोग कर सके। इसलिए कहा गया है कि मेरा अधिकार तुम्हारा कर्त्तव्य है—"My right implies your duty."
5. **अधिकार और कर्त्तव्य जीवन के दो पक्ष हैं**—अधिकार जीवन के भौतिक पक्ष का प्रतीक है तो कर्त्तव्य जीवन के नैतिक पक्ष का। यदि अधिकार का सम्बन्ध मनुष्य के शरीर से है तो कर्त्तव्य का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा से। यदि अधिकार मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं तथा भोजन, वस्त्र इत्यादि की पूर्ति करता है तो कर्त्तव्य आत्मा का परिष्कार कर उसे अलौकिक आनन्द प्रदान करता है। इस प्रकार अधिकार और कर्त्तव्य जीवन के दो पक्ष हैं।
6. **कर्त्तव्य, अधिकार का सदुपयोग है**—अधिकारों के सदुपयोग का दूसरा नाम कर्त्तव्य है। यदि एक व्यक्ति अपने अधिकारों का समुचित ढंग से पालन कर रहा है तो दूसरे रूप में वह अपने कर्त्तव्य की पूर्ति कर रहा है। उदाहरण के लिए सम्पत्ति के अधिकार को ले सकते हैं। सम्पत्ति की सुरक्षा और जीविकोपार्जन हमारा अधिकार है, परन्तु उनके साथ ही हमारा यह कर्त्तव्य भी है कि हम ऐसा कोई कार्य न करें जिससे कि दूसरों के इस अधिकार पर कोई आँच आये।
7. **अधिकार और कर्त्तव्य दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं**—अधिकार और कर्त्तव्य दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि हम केवल अधिकार के ही विषय में सोचें और कर्त्तव्यों को स्थान न दें तो अधिकार समाप्त हो जायेंगे। उसी प्रकार यदि हम कर्त्तव्यों को प्रधानता दें, परन्तु अधिकारों को कुचलने का प्रयास करें तो भी अनुचित होगा। दोनों से समाज में व्यवस्था और शान्ति की स्थापना होती है। दोनों ही समाज के विकास में सहायक होते हैं। इस प्रकार दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं।

प्र.9. शिक्षा के अधिकार की संवैधानिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

उत्तर

शिक्षा का अधिकार (Right to Education)

शिक्षा मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है, किन्तु आरम्भ में, संविधान में शिक्षा को मूल अधिकार के अन्तर्गत स्थान नहीं दिया गया था, यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहिनी जैन** के मामले में शिक्षा के अधिकार को **अनुच्छेद-21** के अन्तर्गत एक मूल अधिकार घोषित किया था। इस कमी को दूर करते हुए संसद ने **86वें संविधान संशोधन अधिनियम-2002 द्वारा अनुच्छेद 21-क के अन्तर्गत शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा प्रदान** कर दिया। **अनुच्छेद 21-क** के अनुसार **राज्य 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध करेगा।** ध्यातव्य है कि इस अधिकार को **1 अप्रैल, 2010** से प्रभावी (लागू) किया गया है।

86वें संशोधन द्वारा **अनुच्छेद 45 के** स्थान पर नया अनुच्छेद प्रतिस्थापित कर राज्यों को यह निर्देश दिया गया है कि वह **6 वर्ष से कम आयु के बच्चों की देख-रेख तथा शिक्षा देने का प्रयास करेगा।** साथ ही इस संशोधन द्वारा **अनुच्छेद 51 क में खण्ड (ट) के तहत् 11वाँ मूल कर्त्तव्य भी जोड़ा गया है।** इसके अनुसार प्रत्येक माता-पिता या अभिभावक का यह मूल कर्त्तव्य है कि वह अपने बालक या प्रतिपाल्य के लिए **6-14 वर्ष** की आयु के बीच शिक्षा का अवसर प्रदान करेगा।

86वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2002 को देश में 'सर्वशिक्षा' के लक्ष्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ है। सरकार ने यह कदम नागरिकों के अधिकार के मामले में द्वितीय क्रान्ति की तरह उठाया है।

इस संशोधन के पहले भी संविधान में भाग 4 के अनुच्छेद 45 में बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी तथापि निदेशक सिद्धान्त होने के कारण यह न्यायालय द्वारा जरूरी नहीं ठहराया जा सकता था। अब उसमें कानूनी प्रावधान की व्यवस्था है।

यह संशोधन अनुच्छेद 45 के निदेशक सिद्धान्त को बदलता है। अब इसे पढ़ा जाता है—'राज्य सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।' **इसमें एक मूल कर्त्तव्य अनुच्छेद 51 (क) के तहत जोड़ा गया**—'प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह 6 से 14 वर्ष तक के अपने बच्चे को शिक्षा प्रदान कराएगा।'

1993 में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत स्वयं जीवन के अधिकार में प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकार में जोड़ा। इसमें व्यवस्था की गई कि भारत के किसी भी बच्चे को 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाए। इसके उपरान्त उसकी शिक्षा का अधिकार आर्थिक क्षमता की सीमा एवं राज्य के विकास का विषय है। इस फैसले में न्यायालय ने अपने पूर्व फैसले (1992) को बदला, जिसमें घोषणा की गई थी कि शिक्षा का अधिकार किसी भी स्तर पर है, जिसमें व्यावसायिक शिक्षा जैसे—चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग भी शामिल है।

प्र.10. शिक्षा का अधिकार अधिनियम में हितधारकों की क्या भूमिका निर्धारित की गई है?

उत्तर

शिक्षा के अधिकार में हितधारकों की भूमिका
(Role of Stakeholders in the Right to Education)

केन्द्र और राज्य सरकारों, स्थानीय प्राधिकारियों, अध्यापकों और विद्यालय प्रबन्धन समिति की भूमिकाएँ निम्नलिखित हैं—

केन्द्र सरकार की भूमिका (Role of Central Government)

प्रारम्भिक शिक्षा और बाल विकास के क्षेत्र में केन्द्र सरकार 15 सदस्यीय राष्ट्रीय सलाहकार समिति (National Advisory Council—NAC) का गठन करेगी। समिति कर्त्तव्य विधेयक के कार्यान्वयन में सरकार को निम्नलिखित विषयों में सलाह देना था—

1. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (National Curriculum Framework—NCF) को शैक्षणिक प्राधिकारियों की सहायता से विकसित करना (परिच्छेद 6, ए);
2. अध्यापक की अर्हता और प्रशिक्षण के मानक को लागू एवं विकसित करना (परिच्छेद 6, बी);
3. राज्य सरकार को नवाचार, शोध, योजना और सामर्थ्य के लिए तकनीकी एवं आर्थिक रूप से सहायता एवं संसाधन उपलब्ध कराना; (परिच्छेद 6, सी)
4. विज्ञप्ति द्वारा अनुसूची में संशोधन करना; तथा
5. प्रारम्भिक शिक्षा की गुणवत्ता के लिए, केन्द्रीय शिक्षक पात्रता परीक्षा [Central Teacher Eligibility Test (CTET)] का आयोजन करना।

राज्य सरकार की भूमिका (Role of State Government)

1. सभी बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराना;
2. अपेक्षित बुनियादी संरचना, अध्यापकों एवं अधिगम के साधनों सहित समीपवर्ती विद्यालय की उपलब्धता को सुनिश्चित करना जैसा कि अधिनियम में निर्दिष्ट है;
3. सभी बच्चों का अनिवार्य रूप से नामांकन, उपस्थिति एवं प्रारम्भिक शिक्षा की पूर्णता को सुनिश्चित करना;
4. किसी भी स्तर पर किसी बच्चे के विरुद्ध विभेदीकरण को रोकना;
5. बुनियादी संरचना के अन्तर्गत कर्मचारी, उपकरण, अध्यापक, प्रशिक्षण की सुविधा, विशिष्ट छात्र प्रशिक्षण की सुविधा और विद्यालय भवन उपलब्ध कराना;
6. अधिनियम की विज्ञप्ति में निर्दिष्ट मानकों को अनुकूल बनाने हेतु गुणवत्ता युक्त शिक्षा को सुनिश्चित करना; तथा
7. शैक्षणिक अधिकारी की नियुक्ति करना।

स्थानीय प्राधिकारियों की भूमिका (Role of Local Authorities)

1. अपने क्षेत्राधिकार में रहने वाले चौदह वर्ष तक के सभी बच्चों के अभिलेख को व्यवस्थित करना;
2. प्रवासी बच्चों सहित सभी बच्चों के नामांकन को सुनिश्चित करना;
3. किसी भी बच्चे के विरुद्ध भेदभाव न किये जाने को सुनिश्चित करना;
4. शैक्षणिक कलेण्डर का निर्धारण करना; तथा
5. अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले विद्यालयों के कार्यक्रमों का संचालन करना।

विद्यालय प्रबन्धन समिति की भूमिका (Role of School Management Committee)

अधिनियम के भाग 21 के अन्तर्गत सभी सरकारी, सरकार द्वारा सहायता प्राप्त और विशेष वर्ग के विद्यालय प्रबन्धन समिति (School Management Committee—SMC) द्वारा संगठित होंगे। निजी विद्यालय भाग 21 के द्वारा अधीन नहीं बनाये जाएँगे क्योंकि वे पहले से ही अपनी संस्था के पंजीकरण के आधार पर प्रबन्धन समिति के अधिदेशाधीन होते हैं।
विद्यालय प्रबन्धन समिति में स्थानीय अधिकारी, शासकीय अधिकारीगण, माता-पिता, अभिभावकों और अध्यापकों को समाविष्ट किया जाएगा। विद्यालय प्रबन्धन समिति निम्नलिखित कार्य करेगी—

1. विद्यालय के विकास की योजना को तैयार करना एवं उसकी अनुशंसा;
2. विद्यालय के कार्यों का संचालन;
3. सरकारी अनुदान के उपयोग का प्रबोधन; और
4. निर्धारित किये गये कार्यक्रमों को पूरा करना।

अध्यापकों की भूमिका (Role of Teachers)

1. विद्यालय में नियमितता एवं समयनिष्ठा को बनाये रखना;
2. प्रवासी बच्चों सहित सभी बच्चों के नामांकन को सुनिश्चित करना;
3. सभी बच्चों की अधिगम योग्यता का मूल्यांकन करना और यदि आवश्यक हो तो उन्हें पूरक अतिरिक्त निर्देश प्रदान करना; तथा
4. माता-पिता के साथ बैठक का आयोजन करना और उन्हें बच्चे से सम्बन्धित उपस्थिति में नियमितता, अधिगम-योग्यता, प्रगति और अन्य विषयों के प्रति सूचित करना।

प्र.11. राज्य का शिक्षा पर क्या प्रभाव होता है? विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

राज्य का शिक्षा पर प्रभाव (Influence of State on Education)

जनतान्त्रिक शासन-व्यवस्था में राज्य का यह प्रमुख कर्त्तव्य होता है कि वह अपने नागरिकों की शिक्षा के लिए उचित एवं पर्याप्त व्यवस्था करे। अपने देश में 6-14 आयुवर्ग के बालक-बालिकाओं के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। वर्तमान समय में सर्वशिक्षा अभियान नामक योजना इसी उद्देश्य के लिए संचालित की जा रही है। इसके पूर्व D.P.E.P. अर्थात्

जिला प्राथमिक शिक्षा का कार्यक्रम चलाया जा रहा था। केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक, तकनीकी एवं उच्च शिक्षा संस्थान खोले गये हैं। देश में 250 से अधिक विश्वविद्यालय हैं जो केन्द्र एवं राज्य सरकारों से प्राप्त धन के द्वारा नागरिकों को उच्च शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में राज्य का पर्याप्त प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है। प्रमुख प्रभाव निम्न प्रकार हैं—

1. **शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण एवं पाठ्यक्रम निर्माण**—प्रत्येक राज्य अपनी सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति, आवश्यकताओं एवं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के सामान्य तथा विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित करता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाता है। उदाहरण के लिए, बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं। राज्य अपने क्षेत्र के शिक्षाविदों तथा विशेषज्ञों के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न कराता है। विभिन्न शिक्षा-आयोगों की स्थापना करना तथा उनकी सिफारिशों पर अमल करवाना इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।
2. **शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं व्यवस्था पर प्रभाव**—सरकार का गठन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा होता है। विधायक (M.L.A.), संसद् सदस्य (M.P.) एवं मन्त्रिमण्डल सभी मिलकर आवश्यकतानुसार शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना का निर्णय करते हैं, उनकी सभी भौतिक एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त धन की व्यवस्था करते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में राज्य का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।
3. **शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति पर प्रभाव**—प्रत्येक राज्य निर्धारित प्रक्रिया के द्वारा शिक्षकों एवं अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति करता है, उनकी सेवाशर्तें तय करता है, इनके वेतन भत्तों की व्यवस्था करता है। जनप्रतिनिधियों का सबसे अधिक दबाव इसी कार्य के लिए पड़ता है।
4. **शिक्षा प्रशासन एवं निरीक्षण पर प्रभाव**—शिक्षा विभाग की प्रशासनिक संरचना पूर्णतया राज्य द्वारा निर्धारित की जाती है जो कि राज्य की नीतियों, उद्देश्यों एवं निर्देशों के आधार पर शैक्षणिक व्यवस्था का संचालन एवं निरीक्षण करते हैं। शासन द्वारा स्थापित शिक्षण-संस्थाओं पर तो राज्य का पूर्ण नियन्त्रण रहता ही है किन्तु निजी शिक्षण-संस्थाओं पर भी राज्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

निजी-शिक्षण संस्थाओं की स्थापना के लिए राज्यों ने नियम एवं प्रक्रिया निर्धारित की है। स्तर के अनुसार Norms (मानदण्ड) निर्धारित किये हैं जिनका पालन करना व्यवस्थापकों एवं संचालकों का दायित्व है। राज्य के प्रशासनिक एवं शिक्षा विभाग के अधिकारी इसी आधार पर अशासकीय शिक्षण-संस्थाओं पर नियन्त्रण रखते हैं।

प्र.12. नागरिक अधिकार पत्र (Citizen's Charter) का अर्थ एवं विशेषताओं को समझाते हुए इसकी अवधारणा के सिद्धान्तों तथा प्रमुख घटकों का भी विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

नागरिक अधिकार-पत्र का अर्थ एवं विशेषताएँ
(Meaning and Characteristics of Citizen's Charter)

अर्थ—सामान्य अर्थ में नागरिक अधिकार-पत्र किसी संगठन द्वारा जनहित में जारी वह संक्षिप्त दस्तावेज है जिसमें प्रशासनिक पारदर्शिता, कार्यकुशलता, संवेदनशीलता एवं जवाबदेयता इत्यादि लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संगठन की कार्यप्रणाली, कार्य की प्रक्रिया, कार्य निष्पादन की निर्धारित अवधि तथा उपभोक्ता या आमजन के अधिकारों सहित उनकी परिवेदना निवारण की प्रणाली वर्णित कर दी जाती है।

भारत सरकार की **केन्द्रीय सचिवालय कार्यालय पद्धति नियम पुस्तिका** में दी गई परिभाषा के अनुसार—"नागरिक अधिकार पत्र एक ऐसा दस्तावेज है जो सेवा के मानक, सूचना, चयन एवं परामर्श, निष्पक्षता एवं सुगमता, शिकायत निवारण, सौम्यता एवं धन के मूल्य के सम्बन्ध में अपने नागरिकों या ग्राहकों के प्रति संगठन की प्रतिबद्धता पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रयास का निरूपण करता है। इसमें संगठन की प्रतिबद्धता पूर्ण करने के लिए नागरिकों या ग्राहकों से संगठन द्वारा की जाने वाली अपेक्षाएँ भी सम्मिलित हैं।"

विशेषताएँ—नागरिक अधिकार पत्र की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. यह सुशासन की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान करने का एक उपकरण है।
2. इससे किसी भी प्रशासनिक संगठन की जवाबदेयता तथा प्रतिबद्धता का आभास होता है।
3. यह बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में प्रचलित हुई एक नवीन अवधारणा है जो किसी संगठन के कार्यों में पारदर्शिता, संवेदनशीलता, कार्यकुशलता, कार्य निष्पादन में तत्परता, जवाबदेयता तथा जन सन्तुष्टि की दिशा में आगे बढ़ती है।

4. नागरिक अधिकार-पत्र प्राय: दो-चार पृष्ठों के ऐसे छोटे दस्तावेज होते हैं जिन्हें आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है या कुछ समय में पढ़ा जा सकता है।
5. यह किसी संगठन की संरचना, कार्य विभाजन, उद्देश्य, कार्यप्रणाली, कार्य की निर्धारित अवधि तथा जन शिकायत निवारण की प्रक्रिया का संक्षिप्त विवरण उपभोक्ताओं या आमजन के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

अवधारणा के सिद्धान्त—वस्तुत: नागरिक अधिकार पत्रों की अवधारणा मुख्यत: निम्नांकित सिद्धान्तों (Principles) पर टिकी है—

1. इनके माध्यम से प्रशासनिक संगठन (विशेषत: लोक प्रशासन) की सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार होना चाहिए।
2. इनका निर्माण सम्बन्धित उपभोक्ताओं या सुविधाभोगियों या आमजन के सहयोग से होना चाहिए।
3. संगठन को अपने कार्य एवं प्रक्रिया नागरिक अधिकार पत्र में वर्णित करने से पूर्व उनका सरलीकरण कर लेना चाहिए तथा जनता से प्राप्त सुझावानुसार निरन्तर कार्य समीक्षा करनी चाहिए।
4. प्रत्येक कार्य एवं गतिविधि को निस्तारित करने की एक निर्धारित अवधि होनी चाहिए।
5. संगठन के प्रत्येक कार्य के निष्पादन से मानक निश्चित होने चाहिए।
6. नागरिक अधिकार पत्रों का पर्याप्त प्रचार-प्रसार होना चाहिए। सरल, स्पष्ट तथा स्थानीय भाषा में इनका निर्माण होना चाहिए।
7. जनसाधारण से सम्बन्धित प्रत्येक सूचना तक आमजन की पहुँच सुनिश्चित होनी चाहिए।
8. इनके माध्यम से यह प्रयास होना चाहिए कि समस्त प्रकार के संसाधनों का अधिकाधिक सदुपयोग हो। ग्राहक के साथ मित्रवत् व्यवहार होना चाहिए।
9. संगठन द्वारा त्रुटि होने या उपभोक्ता की परिवेदना सही पाये जाने पर विनम्रतापूर्वक स्वीकार करने की स्वेच्छा प्रशासनिक तन्त्र में होनी चाहिए।

नागरिक अधिकार-पत्रों के घटक
(Components of Citizen's Charter)

भारत सरकार ने **केन्द्रीय सचिवालय कार्य पद्धति नियम पुस्तिका** में नागरिक अधिकार पत्रों के निम्नांकित **घटक** (Components) सम्मिलित किये हैं—

1. संकल्पना और मिशन विवरण,
2. संगठन द्वारा संव्यवहार (Transactions),
3. उपभोक्ताओं या ग्राहकों का विवरण,
4. प्रत्येक नागरिक या ग्राहक समूह को अलग-अलग प्रदान की जाने वाली सेवाओं का विवरण,
5. शिकायत समाधान प्रक्रिया का ब्यौरा और इस तक कैसे पहुँचा जाए, तथा
6. नागरिक या ग्राहक से अपेक्षा।

चार्टर से सम्बन्धित निम्नलिखित क्रियाकलाप **मन्त्रालय या विभाग की वार्षिक रिपोर्ट** में सम्मिलित किये जाते हैं—

1. मन्त्रालय या विभाग और इसके अधीनस्थ कार्यालयों के लिए, चार्टर तैयार करने के लिए की गयी कार्रवाई,
2. चार्टर लागू करने के लिए की गई कार्रवाई,
3. चार्टर को उचित ढंग से लागू करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों, कार्यशालाओं आदि का ब्यौरा,
4. नागरिकों या ग्राहकों के लिए चार्टर के सम्बन्ध में किये गये प्रचार प्रयासों और जागरूकता अभियानों का ब्यौरा, तथा
5. संगठन और चार्टर के क्रियान्वयन का आन्तरिक और बाह्य मूल्यांकन तथा नागरिकों या ग्राहकों के बीच सन्तुष्टि स्तर के मूल्यांकन सम्बन्धी ब्यौरे।

प्र.13. भारत में नागरिक चार्टर की स्थिति की विवेचना कीजिए।

उत्तर

भारत में नागरिक चार्टर
(Citizen Charter in India)

पिछले दो दशकों में भारत में आर्थिक विकास की दिशा में सन्तोषजनक सफलता मिली है। देश में साक्षरता दर भी वर्तमान में अधिक हो गई है। इससे लोगों ने अपने अधिकारों व मार्गों के संदर्भ में जागरूकता बढ़ी है। उपभोक्ता अधिकारों की दिशा में

जागरूकता लाने में 'जागो ग्राहक जागो' जैसे कार्यक्रमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 1996 में भारत सरकार में एक प्रभावी और अनुक्रियाशील प्रशासनिक तन्त्र के विकास पर सहमति बननी प्रारम्भ हो गई थी। 24 मई, 1997 को प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में होने वाली बैठक में केन्द्र व राज्य स्तरों पर प्रभावी और अनुक्रियाशील शासन के लिए एक्शन प्लान को अपनाया गया। विभिन्न राज्यों व संघ शासित प्रदेशों के मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन (1997) में निर्णय लिया गया कि केन्द्र एवं राज्य सरकारें नागरिक घोषणा-पत्रों का निर्माण करेंगी और इन घोषणा-पत्रों की शुरुआत विस्तृत पब्लिक इंटरफेस वाले क्षेत्रों; जैसे—रेलवे, दूरसंचार, डाक, तार तथा लोक वितरण प्रणाली से की जायेगी। इन घोषणा-पत्रों के लिए सेवाओं के मानकों और समय-सीमा को शामिल करना आवश्यक माना गया। इस प्रकार यह अपेक्षा की गई कि नागरिक घोषणा-पत्र एक शिकायत निवारण तन्त्र के रूप में कार्य करेगा। भारत सरकार के प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग द्वारा नागरिक घोषणा-पत्र के निर्माण, प्रचालन व समन्वय की पहल की गई है। नागरिक घोषणा-पत्र में निम्नांकित बातों के शामिल होने की अपेक्षा की जाती है—

1. दृष्टिकोण व मिशन वक्तव्य।
2. संगठन के द्वारा कार्यवाही एवं व्यवसाय का ब्यौरा।
3. ग्राहक, उपभोक्ता का विवरण।
4. प्रत्येक ग्राहक समूह को उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं का विवरण।
5. शिकायत निवारण तन्त्र तथा इस तक पहुँच का विवरण।
6. ग्राहकों से अपेक्षाएँ।

31 मई, 2002 को प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग द्वारा नागरिक घोषणा-पत्र पर एक व्यापक वेबसाइट (www.goicharters.nic.in) लांच की गयी। तीन राष्ट्रीय बैंकों, पीएनबी, पंजाब एवं सिन्ध बैंक और ओरियेन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स को वर्ष 2000 के प्रारम्भ में ही नागरिक घोषणा-पत्र के मानकों के क्रियान्वयन हेतु चयनित किया गया था।
भारत में विभिन्न सरकारी संगठनों व अभिकरणों के नागरिक घोषणा-पत्रों का मूल्यांकन अक्टूबर 1998 से प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग तथा दिल्ली स्थित एक गैर सरकारी संगठन कंज्यूमर कोऑर्डिनेशन काउन्सिल द्वारा किया जाता है।
भारत में नागरिक घोषणा-पत्रों के क्षमता निर्माण के सन्दर्भ में विविध क्षेत्रीय सेमिनारों का आयोजन किया जाता है। इन सेमिनारों का आयोजन एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज ऑफ इंडिया (हैदराबाद), लाल बहादुर शास्त्री नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (मसूरी) आदि स्थानों पर किया जाता है।
इसके अतिरिक्त कुछ चयनित संगठनों द्वारा इंफॉरमेशन एण्ड फेसिलिटेशन सेंटर्स का गठन किया गया है जो नागरिक घोषणा-पत्र के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाते हैं।
नागरिक घोषणा-पत्र की अधिक प्रभावी व सार्थक भूमिका सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी संगठन के नागरिक घोषणा-पत्र के कार्यों से जुड़े कर्मचारियों को नागरिकों की सुविधाओं से निपटने हेतु उचित व पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे वास्तविक रूप में नागरिक-केन्द्रित शासन की अवधारणा को साकार कर सकें।

प्र.14. नागरिक अधिकार-पत्रों में कौन-से मुख्य बिन्दु समाविष्ट होते हैं? उल्लेख कीजिए।

उत्तर

नागरिक अधिकार-पत्रों के मुख्य बिन्दु
(Main Points of Citizen's Charter)

यद्यपि भारत में केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों के विभिन्न मन्त्रालयों, विभागों, प्रशासनिक संगठनों, स्वायत्तशासी संस्थाओं तथा अन्य अभिकरणों द्वारा स्वसम्बन्धित नगारिक अधिकार-पत्र विगत दशक में जारी हुए हैं तथापि उनमें नागरिक अधिकार-पत्र का प्रारूप एवं प्रस्तुति एक समान नहीं है। विभिन्न विभागों के नागरिक अधिकार-पत्रों के अवलोकन-अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि **नागरिक अधिकार पत्रों में निम्नांकित बिन्दु समाविष्ट होते हैं—**

1. **भूमिका**—नागरिक अधिकार-पत्र के शुरुआती भाग में कतिपय संगठन नागरिक अधिकार-पत्र जारी किये जाने की पृष्ठभूमि (Background) एवं इसकी **उपादेयता** (Utility) का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं।
2. **उद्देश्य**—उद्देश्य शीर्षक के अन्तर्गत यह विवरण दिया जाता है कि इस नागरिक अधिकार-पत्र को जारी करने का लक्ष्य क्या है। प्राय: इसके अन्तर्गत संगठन की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता एवं जवाबदेयता लाना, जन सन्तुष्टि प्रदान करना, भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण करना, कार्य निष्पादन में सुधार करना, प्राप्त सुझावों का विश्लेषण कर संगठन में प्रयुक्त करना, संगठन की नीति, कार्यक्रम एवं कानून जनता तक पहुँचाना, जनसाधारण एवं उपभोक्ता वर्ग को जागरूक करना, संगठन-सूचना प्रसारित करना और लोकतान्त्रिक प्रशासनिक मूल्यों की स्थापना करना इत्यादि वर्णित होता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कतिपय संगठन नागरिक अधिकार-पत्रों में अपने विभाग के उन उद्देश्यों का वर्णन करते हैं, जिनकी प्राप्ति हेतु वह संगठन कार्यरत है। साथ ही कई बार संगठन की **प्रशासनिक संरचना एवं कार्यप्रणाली का भी संक्षिप्त विवरण** दे दिया जाता है।

3. **क्षेत्र**—नागरिक अधिकार के इस भाग में उस संगठन के **कार्यक्षेत्र,** लक्षित वर्ग, उपभोक्ता, उत्पाद तथा प्रदत्त सेवा इत्यादि का विवरण रहता है जिसमें यह पता चलता है कि नागरिक अधिकार पत्र किन सेवाओं पर लागू है तथा किनके लिए है।
4. **नागरिक अधिकार**—इस भाग में यह वर्णित किया जाता है कि संगठन की सेवाएँ प्राप्त करने वाले उपभोक्ताओं या आम जनता को क्या-क्या अधिकार तथा सुविधाएँ प्राप्त हैं। साथ ही यह भी बताया जाना अपेक्षित है कि ये अधिकार किस प्रकृति के हैं।
5. **कार्य विभाजन एवं समयावधि**—इस भाग में यह वर्णित किया जाता है कि संगठन की कौन-सी शाखा (खण्ड) तथा कौन-सा कार्मिक क्या कार्य निष्पादन करता है अर्थात् किस कार्य हेतु किससे सम्पर्क करना है। साथ ही उस संगठन से सम्बन्धित सभी सामान्य एवं प्रमुख कार्यों के निस्तारण हेतु **समयावधि** निश्चित कर दी जाती है। भारत के अधिसंख्य विभागों के नागरिक अधिकार-पत्रों में प्राय: यह अवधि वर्णित रहती है। उदाहरण के लिए, राजस्व मण्डल, अजमेर के नागरिक अधिकार-पत्र में विस्तारपूर्वक यह बताया गया है कि पटवारी द्वारा कौन-सा कार्य कितने दिन में पूर्ण कर दिया जाएगा।
6. **अपील एवं शिकायत प्रक्रिया**—नागरिक अधिकार-पत्र में यह भी वर्णित किया जाता है कि यदि उपभोक्ता का कार्य निर्धारित अवधि में निर्धारित स्तर (कार्मिक) पर सम्पन्न न हो तो किस स्तर पर या अधिकारी के पास अपील या शिकायत की जा सकती है। वस्तुत: नागरिक अधिकार-पत्रों का लक्ष्य प्रशासनिक कार्यों में पारदर्शिता एवं जवाबदेयता लाना तथा जनता को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करना होता है।

भारत में **सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005** लागू हो जाने के पश्चात् कतिपय प्रशासनिक संगठनों ने अपने नागरिक अधिकार-पत्रों में इस अधिकार का विवरण देना भी शुरू कर दिया है। इस विवरण में यह वर्णन रहता है कि विभाग (संगठन) के लोक सूचना अधिकारी (PIO) तथा अपील अधिकारी कौन हैं तथा सूचना प्राप्ति की प्रक्रिया एवं शुल्क क्या है? सन् 2005 से प्रवर्तित **सूचना के अधिकार** से सम्बन्धित विवरण पूर्व पृष्ठों पर दिया जा चुका है।

विगत दशक में भारत सरकार के अनेक मन्त्रालयों तथा संगठनों ने 'नागरिक अधिकार-पत्र' निर्मित किये तथा आम जनता के लिए जारी किये गये हैं। इनमें तेल एवं प्राकृतिक गैस मन्त्रालय, पासपोर्ट संभाग, विदेश मन्त्रालय, औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग, सार्वजनिक वितरण विभाग, भारतीय जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, दिल्ली विकास प्राधिकरण, डॉ० राम मनोहर लोहिया अस्पताल, दिल्ली तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकांश बैंक अग्रणी रहे हैं। सन् 2007 तक 118 नागरिक अधिकार-पत्र केन्द्रीय विभागों या संगठनों द्वारा तथा 711 नागरिक अधिकार-पत्र राज्य सरकारों के अभिकरणों द्वारा जारी हो चुके थे। राजस्थान में भी 1998 में सार्वजनिक वितरण विभाग, राजस्व विभाग तथा पुलिस विभाग सहित अन्य विभागों ने भी नागरिक अधिकार-पत्र घोषित कर प्रशासनिक सुधारों को आगे बढ़ाया है।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

लैंगिक संवेदनशीलता
Gender Sensitivity

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लैंगिक विषमता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर लिंग के आधार पर महिलाओं पर किसी भी प्रकार का भेदभाव, बहिष्कार या बन्धन लगाना लैंगिक विषमता कहलाता है।

प्र.2. लैंगिक विषमता से लिंग भेदभाव किस प्रकार बढ़ता है?

उत्तर लैंगिक विषमता लिंग भेदभाव को उत्पन्न करती है। उदाहरणार्थ, भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है वहाँ पुरुष की प्रधानता होती है और स्त्री का अवमूल्यन होता है तथा पुरुषों एवं महिलाओं के आदर्शों में बहुत अन्तर पाया जाता है। इसलिए जन्म से ही लिंग भेदभाव शुरू हो जाता है।

प्र.3. लैंगिक संवेदनशीलता के लिए उत्तरदायी दो कारणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर लैंगिक संवेदनशीलता के लिए उत्तरदायी दो कारण हैं—1. अज्ञानता एवं अन्धविश्वास, 2. अशिक्षा।

प्र.4. लैंगिक संवेदनशीलता के दो आर्थिक पहलू लिखिए।

उत्तर लैंगिक संवेदनशीलता के दो आर्थिक पहलू हैं—

1. बहुत से कार्य क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ कार्य करने में स्त्रियों की भागीदारी अधिक है लेकिन फिर भी महिला श्रमिक को पुरुष श्रमिक की अपेक्षा पारिश्रमिक कम मिलता है तथा ऐसे क्षेत्रों (कृषि क्षेत्र) में संगठन की कमी है।
2. घरेलू उद्योगों; जैसे अगरबत्ती बनाना, बीड़ी या दियासलाई बनाना, कालीन बनाना, पापड़ उद्योग आदि; में न तो रोजगार की सुरक्षा पर ध्यान दिया गया है और न ही मजदूरी की उचित व्यवस्था है। वहाँ के काम की समयावधि अधिक है और श्रम कल्याण की कोई व्यवस्था नहीं है। इतना ही नहीं, यौन शोषण का भी भय बना रहता है।

प्र.5. संस्कृति से सम्बन्धित मैकाइवर की परिभाषा प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर संस्कृति हमारे जीवन-क्रमों, चिन्तन-पद्धतियों, दैनिक सम्पर्कों, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन, विनोद आदि में हमारी प्रकृति की ही अभिव्यक्ति है।

प्र.6. भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता लिखिए।

उत्तर भारतीय संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता '**अविभक्त विभक्तेषु**' अर्थात् 'अनेकता में एकता' है। इसी विशेषता के कारण भारतीय संस्कृति हजारों वर्षों से अपने अस्तित्व को बनाये हुए है। आज भी यह विशेषता भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख एवं अनुपम विशेषता मानी जाती है। इसी को भारतीय संस्कृति की आत्मा भी कहा गया है।

प्र.7. भारत में प्रजातीय भिन्नता पर एक लेख लिखिए।

उत्तर भारत में अनेक प्रजातियों के लोग निवास करते हैं। संसार की लगभग सभी प्रमुख प्रजातियों के लोग भारत में निवास करते हैं। इसीलिए कुछ लोग भारतवर्ष को प्रजातियों का अजायबघर भी कह देते हैं। यह ठीक भी है, क्योंकि विभिन्न प्रजातियों के लोग ही भारत में नहीं आए, अपितु इनमें इतना अधिक मिश्रण हो गया है कि आज कोई भी प्रजाति अपनी विशुद्ध विशेषताओं को बनाये रखने में सफल नहीं रही है।

प्रजाति सामान्य शारीरिक लक्षणों वाले व्यक्तियों का एक समूह है। ये शारीरिक विशेषताएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी जन्म से ही हस्तान्तरित होती रहती है। **मजूमदार** के अनुसार, "व्यक्तियों के समूह को उस समय प्रजाति कहा जाता है, जब इसके सभी सदस्यों में कुछ समान महत्त्वपूर्ण शारीरिक लक्षण पाये जाते हैं जो आनुवंशिकता के माध्यम द्वारा वंशानुगत रूप से हस्तान्तरित होते हैं।"

प्र.8. राष्ट्रीयता के मार्ग में उत्पन्न होने वाली दो बाधाएँ लिखिए।

उत्तर 1. भाषावाद तथा 2. जातिवाद।

प्र.9. राष्ट्र और राष्ट्रीयता में दो अन्तर बताइए।

उत्तर राष्ट्र और राष्ट्रीयता में दो अन्तर निम्न प्रकार हैं—

1. निश्चित क्षेत्र में निवास करने वाला जनसमुदाय राष्ट्र होता है, जबकि राष्ट्रीयता में आध्यात्मिक व सांस्कृतिक भावना होती है जो राष्ट्र को एकता में आबद्ध रखती है।
2. राष्ट्र की अभिव्यक्ति मूर्त रूप में होती है। उसका मूर्त रूप ही राष्ट्रीयता के रूप में जाना जाता है।

प्र.10. राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता के दो दोष लिखिए।

उत्तर 1. सैन्यवाद को जन्म तथा 2. युद्ध को प्रोत्साहन।

प्र.11. राष्ट्रवाद के दो कारकों को लिखिए।

उत्तर 1. धर्म की समानता का भाव तथा 2. समान सांस्कृतिक जीवन।

प्र.12. राष्ट्रीयता के दो तत्त्व बताइए।

उत्तर 1. भाषा की एकता तथा 2. भौगोलिक एकता।

प्र.13. राष्ट्र एकता बनाये रखने के दो उपाय लिखिए।

उत्तर 1. सर्वधर्म समभाव तथा 2. शिक्षा का प्रसार।

प्र.14. मानवाधिकार का अर्थ बताइए।

उत्तर अधिकार सामाजिक जीवन की वे दशाएँ तथा सुविधाएँ हैं जिनके अभाव में कोई भी व्यक्ति अपना समुचित विकास नहीं कर सकता। इस प्रकार मानवाधिकार से तात्पर्य उन अधिकारों (दशाओं एवं सुविधाओं से है जिनमें मानव का सर्वोच्च कल्याण निहित है।)

प्र.15. "मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है, पर हर जगह वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है।" यह कथन किसका है?

उत्तर "मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है, पर हर जगह वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है।" यह कथन रूसो का है।

प्र.16. संयुक्त राष्ट्र के कितने अनुच्छेदों में किसी-न-किसी रूप में मानवाधिकार का उल्लेख है?

उत्तर संयुक्त राष्ट्र द्वारा दिये गये 30 अनुच्छेदों में किसी-न-किसी रूप में मानवाधिकार का उल्लेख है।

प्र.17. मानवाधिकारों से सम्बन्धित विश्वव्यापी घोषणा का एक महत्त्व लिखिए।

उत्तर मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा जनसाधारण की उच्चतम आकांक्षाओं तथा भावनाओं को पूरा करती है।

प्र.18. मानवाधिकारों की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर मानवाधिकारों की दो विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. मानवाधिकार प्राकृतिक हैं जो मानव को जन्म लेते ही प्राप्त हो जाते हैं।
2. ये अधिकार सम्पूर्ण मानव मात्र को बिना किसी भेदभाव के प्राप्त हो जाते हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लैंगिक विषमता से आप क्या समझते हैं?

उत्तर

लैंगिक विषमता (Gender Inequality)

"लिंग के आधार पर महिलाओं पर किसी भी प्रकार का भेदभाव, बहिष्कार या बन्धन लगाना। स्त्री-पुरुष को समानता के आधार पर प्राप्त अधिकारों को कमजोर करना या निष्प्रभावी बनाना। महिलाओं को उनके मानवाधिकारों के साथ-साथ उनके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक या किसी अन्य क्षेत्र की मौलिक स्वतन्त्रताओं के उपभोग या इस्तेमाल से वंचित करना।" समाज में लैंगिक विषमता के दो आधार हैं—**(क) जैविकीय** तथा **(ख) सामाजिक-सांस्कृतिक।** ये दोनों ही आधार लैंगिक विषमता को अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। इसकी सैद्धान्तिक व्याख्या करने से पूर्व लिंग किसे कहा जाता है, उसे समझना होगा। सामान्य भाषा में लिंग का अर्थ व्यक्ति की श्रेणियों तथा व्यक्ति द्वारा रति-क्रियाओं दोनों से होता है। किन्तु जीव

विज्ञान के सन्दर्भ में लिंग का अर्थ शरीर रचना सम्बन्धी विभेदों से है जो स्त्री तथा पुरुष के मध्य पाये जाते हैं। हमारा लिंग व्यापक रूप में हमारी जैविकीय संरचना जीन्स का परिणाम है।

प्र.2. भारतीय महिलाओं के समक्ष लैंगिक विषमता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली दो प्रमुख समस्याएँ बताइए।

उत्तर भारतीय महिलाओं के समक्ष लैंगिक विषमता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली दो प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

1. **अशिक्षा की समस्या**—नई दिल्ली स्थित 'भारतीय समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद्' द्वारा किये गये एक अध्ययन से पता चलता है कि सन् 1971 में 18.4 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर थीं। सन् 1981 में यह प्रतिशत 25 था जबकि सन् 1991, 2001 तथा 2011 की जनगणनाओं के अनुसार स्त्रियों की साक्षरता प्रतिशत क्रमश: 39.42, 54.16 तथा 65.46 हो गया है। वास्तव में, यह प्रगति नगरीय क्षेत्रों में उच्च और मध्यम वर्ग के बीच अधिक हुई है।
   स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित सबसे प्रमुख समस्या यह है कि प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर स्त्रियों की बीच में पढ़ाई छोड़ने की दर बहुत ऊँची है। गरीब माँ-बाप लड़कियों को आगे पढ़ा नहीं पाते। क्योंकि उन्हें या तो घरेलू काम-काज में सहायता देनी पड़ती है, अपने छोटे बहन-भाइयों को देखना पड़ता है या बाहर धनोपार्जन में लगना पड़ता है। उनकी शिक्षा का पाठ्यक्रम भी जीवन की वास्तविकताओं से दूर है। वह पाठ्यक्रम न तो उन्हें जीविकोपार्जन के लिए तैयार करता है और न ही उन्हें एक आदर्श गृहिणी या माँ की भूमिकाओं से जोड़ पाता है। जहाँ कहीं व्यावसायिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है, वहाँ भी सिलाई-कढ़ाई, गृह-सज्जा, नर्सिंग, सौन्दर्यीकरण आदि तक ही उनके लिए कोर्स हैं जो सभी उनके परम्परागत रूप तक ही सीमित हैं। वे कोर्स आज के औद्योगिक युग की माँग से सम्बन्धित नहीं हैं।
2. **महिला के प्रति हिंसा**—स्त्री अनेक रूपों में आज हिंसा का शिकार है। यह हिंसा दो रूपों में देखी जा सकती हैं। प्रथम, घरेलू हिंसा तथा द्वितीय, घर से बाहर हिंसा। पहले रूप का सम्बन्ध घर-गृहस्थी में स्त्री का किया जाने वाला शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न है। पुरुष को पत्नी की पिटाई का निरपेक्ष अधिकार है और आम आदमी यह मानकर चलता है कि वह पिटने लायक ही होगी, अत: पिटेगी ही। दुर्भाग्य की बात है कि ऊपर से शान्त और सम्मानित प्रस्थिति वाले अनेक परिवारों में, जहाँ पति-पत्नी दोनों शिक्षित हैं और आत्मनिर्भर हैं, वहाँ भी मार-पीट की घटनाएँ हो जाती हैं और यह नियमितता का रूप लेने लगती हैं।

प्र.3. भारतीय महिलाओं की समस्याओं के समाधान हेतु तीन सुझाव दीजिए।

उत्तर भारतीय महिलाओं की समस्याओं के समाधान हेतु तीन सुझाव निम्न प्रकार हैं—

1. **वैधानिक सुधार**—स्त्री संगठनों की सहभागिता व सलाह से स्त्री सम्बन्धी एक भारतीय स्त्री अधिनियम पारित हो, जो विवाह, उत्तराधिकार, सम्पत्ति, यौन, सन्तानोत्पत्ति आदि विषयों पर स्पष्ट आदेश प्रदान करे। भारत की प्रत्येक वयस्क स्त्री को यह अधिकार दिया जाए कि वह बिना धर्म, जाति, समुदाय के भेदभाव के अपने लिए इस अधिनियम को ग्रहण कर सकती है, इसका लाभ उठा सकती है।
2. **स्त्री शिक्षा का प्रसार**—स्त्री शिक्षा न केवल अनिवार्य की जाए वरन् निर्धन परिवारों की कन्याओं को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाएँ। स्त्री छात्रावासों की व्यवस्था की जाए। इस शिक्षा का आधुनिक अर्थों में व्यावसायीकरण किया जाना चाहिए। स्कूलों के साथ ही एक उत्पादन केन्द्र भी हो, तो और भी अच्छा है। स्त्री शिक्षा का उद्देश्य स्त्री को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना होना चाहिए।
3. **रोजगार एवं स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहन**—स्त्रियों को अधिक से अधिक रोजगार के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके लिए सरकार को आरक्षण व सुरक्षात्मक भेदभाव की नीति अपनानी चाहिए। स्त्रियों को वे सब सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों व जनजातियों को मिल रही हैं।

प्र.4. विभिन्नता में एकता को भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता क्यों माना जाता है?

उत्तर विविधता ने हमारी संस्कृति एवं सभ्यता को समृद्ध ही किया है, 'विविधता में एकता' हमारे देश की विशेषता है, जिसकी सराहना पूरी दुनिया में की जाती है। भारत में ऐसे अनेक कारक हैं, जो हमारे देश को एकता के सूत्र में बाँधकर रखते हैं—

1. **भौगोलिक बनावट**—सबसे पहले भारत की भौगोलिक बनावट इसे एकीकृत रखती है। उत्तर और उत्तर पूर्व में हिमालय पर्वत, पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर, दक्षिण में हिन्द महासागर भारत को एक विशेष पहचान देते हैं। देश के अन्दर लम्बी नदियाँ एक भाग को दूसरे भाग से जोड़ती हैं।

2. **हमारा स्वतन्त्रता संग्राम**—ऐतिहासिक रूप से अनेक चक्रवर्ती राजाओं और बादशाहों ने भारत को एकता के सूत्र में बाँधकर रखा था। जब अंग्रेजों का भारत पर राज था तो भारत के सभी धर्म, भाषा और क्षेत्र की महिलाओं और पुरुषों ने अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट होकर लड़ाई लड़ी थी। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान उभरे गीत और चिह्न विविधता के प्रति हमारा विश्वास बनाये रखते हैं।
3. **हमारा संविधान**—सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही संविधान है। पूरे देश के लिए समान नियम-कानून और एक ही नागरिकता है। भारत का संविधान राष्ट्रीय एकता को बढ़ाता है। भारत के राष्ट्रीय प्रतीक चिह्न राष्ट्र गान और राष्ट्र गीत भी देश को एकता के सूत्र में पिरोते हैं।
4. **सांस्कृतिक एकता**—हमारे देश में सांस्कृतिक दृष्टि से सभी लोग भावनाओं के आधार पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हमने सांस्कृतिक विविधता को अपना लिया है। अपने क्षेत्र के खान-पान, नृत्य-गीत, त्योहार, वस्त्र आभूषण आदि के साथ हमने दूसरे क्षेत्रों की भी इन्हीं विशेषताओं को अपना लिया है। सब साथ मिलकर चलते हैं। एक धर्म के त्योहार मनाने में दूसरे धर्म के लोग भी उत्साह से सम्मिलित होते हैं।
5. **क्षेत्रीय अन्तःनिर्भरता**—भारत का प्रत्येक क्षेत्र यहाँ उत्पन्न वस्तु से दूसरे क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है एवं अनेक आवश्यकताओं के लिए स्वयं भी अन्य क्षेत्रों पर निर्भर है। हमारे बाजार, कल-कारखाने, संचार, परिवहन और यातायात के साधन हमारी आवश्यकताओं को अन्तःनिर्भरता में परिवर्तित करते हैं।

प्र.5. राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली बाधाओं की विवेचना कीजिए।

उत्तर

राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधाएँ
(Obstacles in the way of National Integration)

मध्यकाल में विदेशी शासकों का शासन हो जाने पर भारत की इस अन्तर्निहित एकता को आघात पहुँचा था, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेक समाज-सुधारकों और दूरदर्शी राजपुरुषों के सद्प्रयत्नों से यह आन्तरिक एकता मजबूत हुई थी, किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद अनेक तत्त्व इस आन्तरिक एकता को खण्डित करने में सक्रिय रहे हैं, जो निम्नवत् हैं—

1. **साम्प्रदायिकता**—साम्प्रदायिकता धर्म का संकुचित दृष्टिकोण है। संसार के विविध धर्मों में जितनी बात बतायी गयी हैं, उनमें से अधिकांश बातें समान हैं; जैसे—प्रेम, सेवा, परोपकार, सच्चाई, समता, नैतिकता, अहिंसा, पवित्रता आदि। सच्चा धर्म कभी भी दूसरे से घृणा करना नहीं सिखाता। वह तो सभी से प्रेम करना, सभी की सहायता करना, सभी को समान समझना सिखाता है। जहाँ भी विरोध और घृणा है, वहाँ धर्म हो ही नहीं सकता। जाति-पाँति के नाम पर लड़ने वालों पर इकबाल कहते हैं—**मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।**
2. **क्षेत्रीयता अथवा प्रान्तीयता**—अंग्रेज शासकों ने न केवल धर्म, वरन् प्रान्तीयता की अलगाववादी भावना को भी भड़काया है। इसीलिए जब-तब राष्ट्रीय भावना के स्थान पर प्रान्तीय अलगाववादी भावना बलवती होने लगती है और हमें पृथक् अस्तित्व (राष्ट्र) और पृथक् क्षेत्रीय शासन स्थापित करने की माँगें सुनाई पड़ती हैं। एक ओर कुछ तत्त्व खालिस्तान की माँग करते हैं तो कुछ तेलुगूदेशम् और ब्रज प्रदेश के नाम पर मिथिला राज्य चाहते हैं। इस प्रकार क्षेत्रीयता अथवा प्रान्तीयता की भावना भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए बहुत बड़ी बाधा बन गयी है।
3. **भाषावाद**—भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। यहाँ अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं। प्रत्येक भाषा-भाषी अपनी मातृभाषा को दूसरों से बढ़कर मानता है। फलत; विद्वेष और घृणा का प्रचार होता है और अन्ततः राष्ट्रीय एकता प्रभावित होती है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत को एक संघ के रूप में गठित किया गया है और प्रशासनिक सुविधा के लिए चौदह प्रान्तों में विभाजित किया गया, किन्तु धीरे-धीरे भाषावाद के आधार पर प्रान्तों की माँग बलवती होती चली गयी, जिससे भारत के प्रान्तों का भाषा के आधार पर पुनर्गठन किया गया। तदुपरान्त कुछ समय तो शान्ति रही, लेकिन शीघ्र ही अन्य अनेक विभाषी बोली बोलने वाले व्यक्तियों ने अपनी-अपनी विभाषा या बोली के आधार पर अनेक आन्दोलन किये, जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना को धक्का पहुँचा।
4. **जातिवाद**—मध्यकाल में भारत के जातिवादी स्वरूप में जो कट्टरता आयी थी, उसने अन्य जातियों के प्रति घृणा और विद्वेष का भाव विकसित कर दिया था। पुराकाल की कर्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था ने जन्म पर आधारित कट्टर जाति-प्रथा का रूप ले लिया और प्रत्येक जाति अपने को दूसरे से ऊँची मानने लगी। इस तरह जातिवाद ने भी भारत की

एकता को बुरी तरह प्रभावित किया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हरिजनों के लिए आरक्षण की राजकीय नीति की आर्थिक दृष्टि से दुर्बल सवर्ण जातियों ने कड़ा विरोध किया। विगत वर्षों में इस विवाद पर लोगों ने तोड़-फोड़ आगजनी और आत्मदाह जैसे कदम उठाकर देश की राष्ट्रीय एकता को झकझोर दिया। इस प्रकार जातिवाद राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आज एक बड़ी बाधा बन गया है।

5. **संकीर्ण मनोवृत्ति**—जाति, धर्म और सम्प्रदायों के नाम पर जब लोगों की विचारधारा संकीर्ण हो जाती है, तब राष्ट्रीयता की भावना मन्द पड़ जाती है। लोग सम्पूर्ण राष्ट्र का हित न देखकर केवल अपने जाति, धर्म, सम्प्रदाय अथवा वर्ग के स्वार्थ को देखने लगते हैं।

प्र.6. राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

***अथवा* राष्ट्रीयता की किन्हीं पाँच विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर

राष्ट्रीयता की विशेषताएँ/लक्षण
(Characteristics of Nationalism)

राष्ट्रीयता की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. राष्ट्रीय भावनात्मक एकीकरण से तात्पर्य यह है कि हम सभी अपने को पहले भारतीय समझें, अन्य कुछ बाद में।
2. किसी राष्ट्र के नागरिकों की भावनायें राष्ट्र पर केन्द्रित होनी चाहिए, इसे भावात्मक एकीकरण भी कहते हैं।
3. राष्ट्रीयता में ज्ञानात्मक की अपेक्षा भावात्मक एवं आचरण का प्रत्यय अधिक है।
4. राष्ट्रीयता देश भक्ति का व्यापक स्वरूप है और देश प्रेम से भिन्न है। देश-प्रेम की भावना मातृभूमि तक ही सीमित रहती है।
5. राष्ट्रीयता की भावना में प्रजाति (Race), भाषा, धर्म, प्रान्तीयता संस्कृति तथा परम्पराओं का स्थान गौण (Secondary) होता है। राष्ट्रीयता की भावना इन सबसे ऊपर होती है।
6. अपनी समस्याओं की अपेक्षा राष्ट्रीय समस्याओं को प्राथमिकता दी जाए।
7. राष्ट्र की छोटी बड़ी सामाजिक संस्थायें अपने संकुचित विचारों से ऊपर उठकर राष्ट्र के हित एवं विकास में सहयोग करती हैं।
8. राष्ट्रीयता में नागरिक अपने को राष्ट्र का एक अभिन्न अंग मानता है और राष्ट्र की गतिविधियों के प्रति सजग तथा जागरूक रहता है।
9. राष्ट्रीयता में राष्ट्र की नीतियों तथा मानकों का अनुपालन करना होता है और उनका प्रचार एवं प्रसार भी करना है।
10. राष्ट्र की समस्याओं में सक्रिय भागीदारी का निर्वाह करता है।
11. राष्ट्रीयता की भावना में व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों के प्रति निष्ठावान होता है और उन्हें तल्लीनता से पूरा करने का प्रयास करता है। राष्ट्रीयता से कर्त्तव्य परायणता का भाव जाग्रत होता है।
12. राष्ट्रीयता की भावनाओं के विकास में शिक्षा संस्थाओं की अहम् भूमिका है। सामाजिक विषयों के अध्यापन का प्रमुख लक्ष्य राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना है।

प्र.7. राष्ट्रीयता के विभिन्न दोषों की विवेचना कीजिए।

उत्तर

राष्ट्रीयता के दोष (Demerits of Nationality)

राष्ट्रीयता में कुछ दोष भी हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है—

1. **साम्राज्यवाद का उदय**—उग्र राष्ट्रीयता की भावना देशवासियों को अहंकारी तथा स्वार्थी बना देती है और वे अपने राष्ट्र को ही विश्व शक्ति के रूप में देखना चाहते हैं। इस मनोवृत्ति का परिणाम साम्राज्यवादी विस्तार के रूप में प्रकट होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में साम्राज्यवाद के विकास का एक प्रमुख कारण राष्ट्रवाद भी था।
2. **सैन्यवाद और युद्ध को प्रोत्साहन**—राष्ट्रीयता का उग्र रूप सैन्यवाद और युद्ध को प्रोत्साहन देता है। इतिहास साक्षी है कि उग्र राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर ही फ्रांस तथा जर्मनी अनेक बार युद्धरत हुए और दोनों देशों को जन-धन की अपार क्षति उठानी पड़ी।
3. **विश्व-शान्ति के लिए घातक**—संकीर्ण और उग्र राष्ट्रीयता विश्व-शान्ति के लिए घातक होती है। उग्र राष्ट्रवाद से प्रेरित होकर ही बीसवीं शताब्दी में जर्मनी ने सम्पूर्ण मानव जाति के दो-दो विश्वयुद्धों की विभीषिका झेलने को विवश कर दिया था।

TOUCH n PASS

4. **अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास में बाधक**—राष्ट्रीयता की मान्यता है—**'एक राष्ट्र, एक राज्य'**, लेकिन राष्ट्रीयता का यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल है। राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही विभिन्न राष्ट्रों का दृष्टिकोण अन्य राष्ट्रों के प्रति संकीर्ण तथा उपेक्षापूर्ण हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना का विकास अवरुद्ध हो जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं।
5. **व्यक्ति का नैतिक पतन**—संकीर्ण राष्ट्रीयता व्यक्ति को स्वार्थी और अहंकारी बना देती है। वह इतना पतित हो जाता है कि मानव जाति को समूल नष्ट करने की दिशा में प्रवृत्त हो जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी ने संकीर्ण राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर यहूदियों पर भयानक अत्याचार किये थे।
6. **छोटे-छोटे राज्यों का गठन**—उग्र राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर कभी-कभी छोटे-छोटे राज्य बन जाते हैं और उनमें आपसी द्वेष के कारण देश की एकता को खतरा उत्पन्न हो जाता है। मध्यकाल में यूरोप में अनेक छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना उग्र राष्ट्रीयता का ही परिणाम थी।

प्र.8. मानवाधिकारों से सम्बन्धित विश्वव्यापी घोषणा के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर मानवाधिकारों की घोषणा विश्व की एक ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण घटना है। महासभा ने अधिकारों की इस घोषणा को सभी राष्ट्रों तथा व्यक्तियों के लिए सफलता का एक सामान्य मापदण्ड माना है। मानवाधिकारों की घोषणा के महत्त्व को हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

1. यह घोषणा सार्वभौमिक है जो विश्व के सभी मानवों के लिए समान रूप से लागू होती है। यह घोषणा लिंग, जाति, धर्म, भाषा, राजनीतिक, सामाजिक स्तर के भेदभाव को अस्वीकार करती है।
2. यह घोषणा जनसाधारण की उच्चतम आकांक्षाओं तथा भावनाओं को पूरा करती है।
3. इस घोषणा का निर्माण एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह, एक राष्ट्र अथवा जाति द्वारा नहीं किया गया है, वरन् राष्ट्रों के एक संगठित समाज द्वारा किया गया है। **डॉ० इवाट** का कथन है, "यह प्रथम अवसर है जब राष्ट्रों के संगठित समाज ने मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतन्त्रताओं की घोषणा की है।"
4. इस घोषणा में दिये गये अधिकारों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें सभी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकारों का उल्लेख है। इतिहास में पहली बार इतने व्यापक आधार पर अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता दी गई है।

प्र.9. मानव अधिकारों के ऐतिहासिक विकास की विवेचना कीजिए।

उत्तर संयुक्त राष्ट्र संघ में मानव अधिकारों की व्यवस्था कोई नई व्यवस्था नहीं है। यह सदियों के ऐतिहासिक विकास का फल है। सदियों से मानव ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया है। फ्रांस की क्रान्ति में स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुता जैसे अधिकारों की माँग सन् 1789 ई० में की गई। सन् 1215 ई० का मैग्नाकार्टा, सन् 1676 का बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम, सन् 1679 का अधिकार अधिनियम, सन् 1776 ई० की अमेरिकी स्वतन्त्रता से सम्बन्धित उद्घोषणा को हम वर्तमान में मानव अधिकारों की मुख्य आधारशिला मान सकते हैं। इसके अलावा अनेक महत्त्वपूर्ण सम्मेलनों; जैसे—बर्लिन कांग्रेस, ब्रसेल्स सम्मेलन, हेग शान्ति सम्मेलन आदि में मानव के व्यक्तित्व सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों का उदय हुआ। मानव अधिकार की सुरक्षा के लिए 19वीं शताब्दी में अफ्रीकी दासों के क्रय-विक्रय की आलोचना की गई तथा पश्चिमी एशिया में अल्पसंख्यकों के नरसंहारों तथा मुस्लिम राष्ट्रों में गैर-मुस्लिम जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों को समाप्त करने का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास शुरू किया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1941 ई० में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने चार प्रकार की स्वतन्त्रताओं का उल्लेख किया। भारत में महात्मा गाँधी ने भी रंगभेद तथा जातिभेद की नीति के खिलाफ अन्तर्राष्ट्रीय माहौल तैयार किया। इसके अतिरिक्त रूजवेल्ट तथा चर्चिल की अण्टलाण्टिक चार्टर सम्बन्धी उद्घोषणा, 1942 ई० की संयुक्त राष्ट्र सम्बन्धी उद्घोषणा, वाशिंगटन सम्मेलन (1942), मास्को सम्मेलन (1943), डम्बर्टन औक्स सम्मेलन (1944) तथा विभिन्न वैयक्तिक नागरिक संगठनों ने भी मानव-अधिकार से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को ज्वलन्त मुद्दा बताया।

प्र.10. मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा की त्रुटियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है—

1. **वैधानिकता का अभाव**—मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा कोई वैधानिक प्रपत्र नहीं है। किसी प्रकार की वैधानिक व्यवस्था इन अधिकारों को लागू करने के लिए नहीं दी गई है और न ही यह विश्व के राष्ट्रों को इन अधिकारों का सम्मान

करने का दायित्व सौंपती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के एक प्रतिनिधि ने महासभा में कहा था, "यह एक सन्धि नहीं है, यह एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता भी नहीं है।"

2. **आवश्यक तत्त्वों की उपेक्षा**—विद्वानों ने मानवाधिकारों की आलोचना इस आधार पर भी की है कि इस घोषणा में कुछ अनावश्यक तथ्यों का तो उल्लेख किया गया है लेकिन अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की उपेक्षा की गई है। घोषणा में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की भी ठोस व्यवस्था नहीं की गई है।
3. **दार्शनिक सिद्धान्तों तथा प्राकृतिक नियमों का अभाव**—ब्राजील में एक प्रतिनिधि ने आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् की बैठक में अपने एक वक्तव्य में कहा था कि मानवाधिकारों की इस घोषणा में दार्शनिक सिद्धान्तों तथा प्राकृतिक नियमों का उल्लेख करना व्यर्थ है।
4. **विवादास्पद सिद्धान्त**—**हेन्स केल्सन** के शब्दों में, "इस घोषणा में सभी व्यक्तियों को गरिमा तथा अधिकारों के सम्बन्ध में जन्मजात स्वतन्त्रता तथा समानता प्राप्त है। उन्हें बुद्धि तथा अन्तरात्मा की देन प्राप्त है, परन्तु इन वक्तव्यों का व्यावहारिक दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि विश्व के सभी मानवों को समान बुद्धि तथा अन्तरात्मा की देन उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त विश्व के समस्त मानवों के समान सिद्धान्त को अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है। वास्तव में यह एक खेदजनक तथ्य है कि घोषणा का प्रारम्भ ही एक विवादास्पद वक्तव्य पर आधारित है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लैंगिक विषमता या संवेदनशीलता से आपका क्या आशय है? इसके सामाजिक पहलू का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

लैंगिक विषमता (Gender Inequality)

"लिंग के आधार पर महिलाओं पर किसी भी प्रकार का भेदभाव, बहिष्कार या बन्धन लगाना। स्त्री-पुरुष को समानता के आधार पर प्राप्त अधिकारों को कमजोर करना या निष्प्रभावी बनाना। महिलाओं को उनके मानवाधिकारों के साथ-साथ उनके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक या किसी अन्य क्षेत्र की मौलिक स्वतन्त्रताओं के उपभोग या इस्तेमाल से वंचित करना।"

समाज में लैंगिक विषमता के दो आधार हैं—**(क) जैविकीय तथा (ख) सामाजिक-सांस्कृतिक।** ये दोनों ही आधार लैंगिक विषमता को अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। इसकी सैद्धान्तिक व्याख्या करने से पूर्व लिंग किसे कहा जाता है, उसे समझना होगा। सामान्य भाषा में लिंग का अर्थ व्यक्ति की श्रेणियों तथा व्यक्ति द्वारा रति-क्रियाओं दोनों से होता है। किन्तु जीव विज्ञान के सन्दर्भ में लिंग का अर्थ शरीर रचना सम्बन्धी विभेदों से है जो स्त्री तथ पुरुष के मध्य पाये जाते हैं। हमारा लिंग व्यापक रूप में हमारी जैविकीय संरचना जीन्स का परिणाम है।

स्त्री तथा पुरुष के व्यवहार में विभेद क्या लिंग का परिणाम है? इस विषय पर मत भिन्नता पाई जाती है। कुछ विद्वान स्त्री तथा पुरुष के बीच पाये जाने वाले व्यवहार विभेद (जोकि किसी-न-किसी रूप में सभी सांस्कृतियों में पाये जाते हैं) को जीव विज्ञान का कारण मानते हैं, जबकि कुछ विद्वान इसे सांस्कृतिक कारण से मानते हैं। कुछ संस्कृतियों में स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे शान्त प्रकृति की हों। स्त्री एवं पुरुष के बीच पाये जाने वाले श्रम-विभाजन को कुछ लोग उनमें पाये जाने वाले विभेद के कारण मानते हैं।

लैंगिक विषमता के सामाजिक पहलू
(Social Aspects of Sexual Inequality)

सर्वप्रथम लैंगिक विषमता सामाजिक पहलुओं में दिखाई देती है। सामाजिक पहलुओं में दिखाई देने वाली लैंगिक विषमता का वर्णन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है—

1. **लिंग भेदभाव**—प्रत्येक पितृसत्तात्मक परिवार का यह सामान्य लक्षण है कि वहाँ पुरुष की प्रधानता होती है और स्त्री का अवमूल्यन होता है। भारतीय समाज में इसका रूप अत्यन्त कठोर है। लड़की का जन्म ही अपने में अभिशाप है। पुत्र मुक्तिदाता, बुढ़ापे का सहारा और घर की पूँजी है, जबकि पुत्री का जन्म एक दायित्व और कर्जा है। इसलिए जन्म से ही लिंग भेदभाव शुरू हो जाता है। इनके लालन-पालन के तौर-तरीके बिल्कुल अलग-अलग हैं। लिंग भेदभाव यौन पृथक्करण में प्रकट होता है। लड़कों और लड़कियों के जरा बड़ा होते ही अलग-अलग क्षेत्र हो जाते हैं। उनके खेल भी अलग हैं, पढ़ाई के विषय भी अलग हैं, संस्कार भी अलग हैं और जीवन की पूरी तैयारी ही अलग-अलग होती है।

लड़के को घर से बाहर का जीव माना जाता है, उसे व्यावसायिक तैयारी करनी होती है, उसे जीवन की कठिन प्रतियोगिता के लिए तैयार किया जाता है। जबकि लड़की का जीवन उसके घर की चारदीवारी है, वह रसोई घर के रख-रखाव व बच्चों के लालन-पालन के लिए समाजीकृत की जाती है। उसे घर के कैदखाने का एक ऐसा कैदी बनाया जाता है जो आगे चलकर अपनी कैद को प्यार करने लगे और उसे ही इज्जत और सतीत्व का लक्ष्य मान अपना जीवन-यापन कर सके। स्पष्ट है कि लज्जा उसका गहना बन जाती है और पति परेमश्वर उसका आदर्श। चाहे पति जैसा भी हो जीवन में जोखिम लेना, संकट का सामना करना, अत्याचार का विरोध करना, अन्याय के प्रतिकार में आवाज उठाना उसके वश का नहीं होता और वह पराश्रित व अबला बन जाती है।

2. **शिक्षा में असमानता**—प्रारम्भिक वैदिक साहित्य से हमें यह पता चलता है कि वैदिक युग में लड़की का भी उपनयन संस्कार होता था और वह भी लड़कों की भाँति आश्रमों में शिक्षा के लिए जाती थी। धीरे-धीरे उसे शिक्षा से दूर किया जाता रहा और उसके लिए एकमात्र संस्कार विवाह ही माना जाने लगा। धर्मशास्त्रों तक आते-आते यह प्रक्रिया पूरी हो गई। मुस्लिम काल में तो स्त्री पूर्णत: निरक्षर थी। नई दिल्ली स्थित 'भारतीय समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद्' द्वारा किये गये एक अध्ययन से पता चलता है कि सन् 1971 में 18.4 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर थीं। सन् 1981 में यह प्रतिशत 25 था जबकि सन् 1991, 2001 तथा 2011 की जनगणनाओं के अनुसार स्त्रियों का साक्षरता प्रतिशत क्रमश: 39.42, 54.16 तथा 65.46 हो गया है। वास्तव में, यह प्रगति नगरीय क्षेत्रों में उच्च और मध्यम वर्ग के बीच अधिक हुई है।
स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित सबसे प्रमुख समस्या यह है कि प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर स्त्रियों की बीच में पढ़ाई छोड़ने की दर बहुत ऊँची है। गरीब माँ-बाप लड़कियों को आगे पढ़ा नहीं पाते। क्योंकि उन्हें या तो घरेलू काम-काज में सहायता देनी पड़ती है, अपने छोटे बहन-भाइयों को देखना पड़ता है या बाहर धनोपार्जन में लगना पड़ता है। उनकी शिक्षा का पाठ्यक्रम भी जीवन की वास्तविकताओं से दूर है। वह पाठ्यक्रम न तो उन्हें जीविकोपार्जन के लिए तैयार करता है और न ही उन्हें एक आदर्श गृहिणी या माँ की भूमिकाओं से जोड़ पाता है। जहाँ कहीं व्यावसायिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है, वहाँ भी सिलाई-कढ़ाई, गृह-सज्जा, नर्सिंग, सौन्दर्यीकरण आदि तक ही उनेक लिए कोर्स हैं जो सभी उनके परम्परागत रूप तक ही सीमित हैं। वे कोर्स आज के औद्योगिक युग की माँग से सम्बन्धित नहीं हैं। शिक्षा पाठ्यक्रम लिंग भेदभाव पर आधारित न होकर स्त्रियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिए जो उनके शैक्षिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ, उन्हें इस योग्य बना सके कि वे राष्ट्रीय विकास में अपनी भूमिका अदा कर सकें।

3. **रोजगार में असमानता**—वास्तव में, स्त्री श्रम की भी अजब कहानी है। उसकी गृहस्थी का कार्य जो वह प्राय: सबसे पहले उठकर प्रारम्भ करती है और देर रात तक समाप्त करती है, अनुत्पादक माना जाता है। वह कार्य राष्ट्रीय आय का भाग नहीं होता। जो वह घर से बाहर तथाकथित उत्पादक कार्यों में लगी है, वहाँ भी वह निम्नलिखित समस्याओं का सामना कर रही है—
   (i) कृषि क्षेत्र में जहाँ कि 80 प्रतिशत स्त्रियाँ काम कर रही हैं, वहाँ स्त्री श्रम को पुरुषों की अपेक्षा कम मजदूरी मिलती है तथा वे असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत गिनी जाती हैं और वे मौसमी रोजगार की मार से पीड़ित हैं।
   (ii) घरेलू उद्योग जैसे—अगरबत्ती, बीड़ी या दियासलाई बनाना, चटाई बनाना, पापड़ उद्योग आदि में न तो रोजगार की सुरक्षा है और न निश्चित दर पर मजदूरी है। वहाँ के काम के घण्टे अधिक हैं और श्रम कल्याण की कोई व्यवस्था नहीं है। इतना ही नहीं, वहाँ उनके यौन शोषण का भी भय बना रहता है।
   (iii) संगठित उद्योगों में स्त्रियाँ निम्न स्तर पर ही कार्य कर रही हैं। साथ ही कुछ पुराने उद्योगों, जैसे—जूट, कपड़ा या खाद्यान्नों में उनका प्रतिशत घट रहा है। नये उद्योगों, जैसे—इलेक्ट्रॉनिक या कम्प्यूटर में भी वे कम प्रवेश कर पा रही हैं क्योंकि इस सम्बन्ध में उनके पास पर्याप्त शिक्षा के अवसर नहीं हैं। इसलिए ज्यादातर वे रिसेप्शनिस्ट, टाइपिस्ट, स्टेनोग्राफर, निजी सचिव आदि के रूप में कार्य कर रही हैं।
   (iv) वृत्ति समूहों की दृष्टि से स्त्रियाँ सर्वाधिक शिक्षण में हैं। चिकित्सा और नर्सिंग के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ प्रवेश कर चुकी हैं।
   (v) हर्ष का विषय यह है कि स्त्रियों के लिए कुछ नये क्षेत्र जैसे—मॉडलिंग, पत्रकारिता, प्रशासनिक सेवाएँ, टेलीविजन कलाकार आदि भी व्यवसाय के रूप में पनप रहे हैं। परन्तु यहाँ भी पुरुष प्रधानता का सामना करना पड़ता है और वहाँ भी वे व्यावसायिक प्रगति के सोपान की निचली सीढ़ियों पर ही पहुँच पाई हैं।

4. **स्वास्थ्य एवं पोषण सम्बन्धी सुविधाओं में असमानता**—स्त्रियों में अस्वास्थ्य और कुपोषण की भी भारी समस्या है। बचपन से ही लड़कियों को वह पोषक पदार्थ नहीं दिये जाते, जो लड़कों को दिये जाते हैं। वे स्वयं भी अपने शरीर की रक्षा और स्वास्थ्य पर बहुत कम ध्यान देती हैं। प्राय: घर में वही स्त्री जो अपने पति और बच्चों के लिए अच्छे से अच्छा भोजन बनाती हैं, बाद में जो बच जाता है उसे खाती हैं और अगर बासी भोजन रखा है, तो पहले उसे खाती हैं। मातृत्व का भार भी उस पर सबसे ज्यादा है। शारीरिक व्यायाम की तो उन्हें शिक्षा ही नहीं दी जाती है। ज्यादातर मामलों में उनमें खून की कमी रहती है। एक ओर गरीब निर्धन स्त्रियों को उचित चिकित्सा एवं पोषण मिलना ही दुष्वार है, तो दूसरी ओर धनी स्त्रियों के लिए समस्या इससे उल्टी है। वहाँ अत्यधिक दवाइयों का सेवन या आलसी जीवन एक समस्या बन गया है। ज्यादातर स्त्रियाँ असंगठित कार्य क्षेत्र में लगी हैं, जहाँ उनके स्वास्थ्य का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है। बहुत से व्यवसाय विशेषत: स्त्री के लिए हानिकारक हैं, परन्तु वहाँ भी उनकी देखभाल का कोई प्रबन्ध नहीं है। घर के मार-पीट के वातावरण और तनाव भरी जिन्दगी के बीच स्त्री का स्वास्थ्य गिरता ही जाता है। हमारे समाज में परिवार नियोजन का प्रमुख लक्ष्य स्त्रियों को ही बनाया गया है। विदेशों में जो जन्म निरोध के तरीके खतरनाक घोषित किये जा चुके हैं, वे भी यहाँ चलाये जा रहे हैं। यदि हम नसबन्दी या बन्ध्याकरण के आँकड़ों को देखें तो पता चलेगा कि स्त्री बन्ध्याकरण का प्रतिशत कहीं ज्यादा ऊँचा है।
5. **यौन शोषण तथा यौन उत्पीड़न**—पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की निम्न स्थिति के परिणामस्वरूप उनकी सबसे प्रमुख समस्या उनका यौन शोषण और यौन उत्पीड़न है। यह हमें निम्नलिखित रूपों में दिखाई पड़ता है—
   (i) **वेश्यावृत्ति**—यह विश्व का सबसे पुराना व्यवसाय माना जाता है। शायद जब से संगठित समाज है, तब से वेश्यावृत्ति है। वेश्यावृत्ति से समाज का नैतिक पतन होता है। सिफलिस व गोनोरिया जैसे यौन रोग फैलते हैं। अब तो एड्स जैसा भयानक रोग भी फैलने लगा है, जो सबसे अधिक घातक यौन रोग है। वेश्यालय वह क्षेत्र है जहाँ अपराध पनपते हैं। वास्तव में, यौन कोई वस्तु नहीं है और बाजार में खरीदी या बेची जाए। यह तो मानव की स्वाभाविक, पवित्र और विपरीत लिंग के प्रति स्वेच्छा से प्रेम व समर्पण का विषय है। इसी के द्वारा नये जीवन का सृजन होता है। इसका क्रय-विक्रय न केवल हानिकारक है, अपितु अमानवीय व घिनौना भी है।
   (ii) **अश्लील साहित्य**—नग्न एवं अर्द्धनग्न महिला की तस्वीरों, काम चेष्टाओं और कुत्सित किस्सों पर आधारित अश्लील साहित्य भी बाजार में धन कमाने का एक सरल साधन बन गया है। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ इस प्रकार की सामग्री द्वारा मानव की काम भावनाओं का शोषण करती हैं। अश्लील साहित्य किशोर-किशोरियों और युवाओं के नैतिक पतन का कारण बनता है और उन्हें गुमराह करता है। ऐसे साहित्य पर भी कानून की रोक लगी है, पर वह चोरी-छिपे बाजार में ऊँचे दामों पर मिल ही जाता है। इस व्यापार का आधार भी महिला का यौन शोषण ही है।
   (iii) **विज्ञापन**—आज के व्यवसायों का मुख्य आधार विज्ञापन है और विज्ञापन स्त्री के अंग प्रदर्शन पर आधारित है। चाहे किसी वस्तु का नारी के जीवन से सीधा सम्बन्ध हो या न हो, परन्तु उसके शरीर के उत्तेजक चित्रों के अभाव में विज्ञापन अधूरा समझा जाने लगा है। यही कारण है कि मॉडलिंग का व्यवसाय लोकप्रिय होता जा रहा है। यह विज्ञापन भी राष्ट्र के नैतिक पतन के लिए उत्तरदायी है। यह भी सिद्ध होता है कि महिला की देह एक वस्तु है जो सार्वजनिक रूप से विभिन्न प्रयोगों के लिए बाजार में उपलब्ध है। अनेक महिला संगठन ऐसे विज्ञापनों के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं।
   (iv) **सिनेमा**—अधिकांश चलचित्र स्त्री के यौन शोषण के ज्वलन्त उदाहरण हैं। व्यावसायिक रूप से चलचित्र की सफलता के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि उसमें अर्द्धनग्न स्त्री के द्वारा कैबरे के दृश्य और असहाय स्त्री पर पुरुष के पुरुषत्व की ताकत को प्रकट करते हुए क्रूर बलात्कार के दृश्य अवश्य हों। अधिकतर चलचित्र पुरुष प्रधान होते हैं। नायिका तो प्रदर्शन के लिए एक गुड़िया मात्र दिखाई जाती है। जब लम्बे कामुक दृश्यों के द्वारा दर्शकों की कामवासना को उत्तेजित किया जाता है तो स्त्री का अपमान भी होता है। सच तो यह है कि स्त्री की देह उसकी निजी पवित्र धरोहर है जिस पर उसी का निरपेक्ष अधिकार होना चाहिए और किन्हीं भी मजबूरियों या प्रलोभनों से उसका सार्वजनिक प्रदर्शन सारे राष्ट्र के लिए लज्जा का विषय है। इस दिशा में आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिए।
   (v) **छेड़-छाड़**—स्त्री की दैहिक समस्याओं में सबसे प्रमुख समस्या उनका छेड़-छाड़ का शिकार होना है। बसों में, बाजारों में, स्कूल और कॉलेजों के प्रांगणों में, वे पुरुष द्वारा छेड़-छाड़ का शिकार होती हैं। उन पर आवाज कसना, उन्हें स्पर्श करना, कुत्सित इशारा करना, चोंटना-नोचना एक आम बात बन गई है।

इस भाँति, अनेक रूपों में स्त्री यौन शोषण और उत्पीड़न की शिकार है। इसके विरुद्ध अभियान तभी सफल हो सकता है, जब जागरण हो और महिलाएँ शिक्षित व आत्मनिर्भर हों। हमें बच्चों के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा का तरीका भी बदलना होगा ताकि पुरुष यौन के प्रति इतनी कुण्ठाओं से ग्रसित न हों और स्त्रियाँ अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ हो सकें।

6. **दहेज के कारण उत्पीड़न**—भारतीय समाज में स्त्री के लिए विवाह में दहेज अनिवार्य है। इसलिए दहेज की समस्या एक भयंकर समस्या बनती जा रही है। आये दिन समाचार पत्रों में दहेज की शिकार अभागी स्त्रियों के जलाने की घटनाओं का विवरण छपा होता है। पिछले कुछ वर्षों में ऐसी घटनाओं का प्रतिशत बढ़ता ही जा रहा है और दहेज का समाज के प्रत्येक समुदाय में प्रसार भी होता जा रहा है। इसके विरुद्ध हाल ही में कठोर कानून भी बनाये गये हैं, पर पति के परिवार में अकेली स्त्री क्या करे? यह कुप्रथा तभी समाप्त की जा सकती है जब इसके विरुद्ध युवा लड़के-लड़कियों में एक जागरण अभियान चलाया जाए। लड़कियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाए जिससे उनमें यह संकल्प जाग उठे कि वे ऐसे व्यक्ति से विवाह नहीं करेंगी जो दहेज की माँग करते हैं।
7. **तलाक द्वारा उत्पीड़न**—पति-पत्नी के वैवाहिक सम्बन्धों का कानूनी दृष्टि से विच्छेद किया जाना तलाक है। तलाक के विभिन्न समुदायों में भिन्न-भिन्न आधार हैं, परन्तु तलाक स्त्री के लिए पुरुषों की अपेक्षा अधिक कष्टकारी और आघातपूर्ण घटना है। अदालत की लम्बी प्रक्रिया, बच्चों का प्रश्न, स्वयं के जीवन निर्वाह का प्रश्न, सामाजिक अप्रतिष्ठा और निन्दा का सामना—यह सब स्त्री को भुगतना पड़ता है, पुरुष को नहीं। तलाक प्राप्त स्त्री भारतीय समाज में अप्रतिष्ठा का विषय है और उसके पुनर्विवाह की समस्या भी कठिन है। इसलिए स्त्री के लिए तलाक एक महँगा सौदा है।
8. **वैधव्यकरण के बारे में दोहरे मापदण्ड**—स्त्री के लिए वैधव्य सबसे भयानक शब्द है। उसका सबसे बड़ा सौभाग्य सुहागिन बनना है। सूनी माँग मृत्यु से भी ज्यादा भयानक है। हिन्दुओं की उच्च जातियों में विधवा के पुनर्विवाह की परम्परा नहीं थी। विधवा से बड़े संयमी और तपस्वी जीवन व्यतीत करने की आशा की जाती थी। हिन्दू समाज ने शायद इसीलिए सती-प्रथा का आविष्कार कर लिया था कि विधवा अपने पति की लाश के साथ जिन्दा जला दी जाए ताकि न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। या फिर वृन्दावन और बनारस में विधवाओं को बाल मुँडवाकर रहने के लिए छोड़ दिया जाता था। वहाँ आज भी ये हजारों की संख्या में सड़कों पर भिक्षा माँगती दिखाई देती हैं। अनेक विधवाएँ वेश्यालयों तक भी पहुँच जाती हैं।
9. **महिला के प्रति हिंसा**—स्त्री अनेक रूपों में आज हिंसा का शिकार हैं। यह हिंसा दो रूपों में देखी जा सकती हैं। प्रथम, घरेलू हिंसा तथा द्वितीय, घर से बाहर हिंसा। पहले रूप का सम्बन्ध घर-गृहस्थी में स्त्री का किया जाने वाला शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न है। पुरुष को पत्नी की पिटाई का निरपेक्ष अधिकार है और आम आदमी यह मानकर चलता है कि वह पिटने लायक ही होगी, अत: पिटेगी ही। दुर्भाग्य की बात है कि ऊपर से शान्त और सम्मानित प्रस्थिति वाले अनेक परिवारों में, जहाँ पति-पत्नी दोनों शिक्षित हैं और आत्मनिर्भर हैं, वहाँ भी मार-पीट की घटनाएँ हो जाती हैं और यह नियमितता का रूप लेने लगती हैं।
10. **स्त्री हत्या**—स्त्री हत्या वह हत्या कही जा सकती है, जो उस समय हो जबकि वह माँ के गर्भ में है या जन्म लेने के बाद शिशु हत्या के रूप में हो या बहू को जलाने की घटना हो या किसी अन्य प्रकार के उत्पीड़न से मारने के रूप में हो। इतना ही नहीं, इसमें ऐसी घटनाएँ भी शामिल हैं जिनमें ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दी गई हों कि स्त्री ने मजबूर होकर आत्महत्या कर ली हो। ऐसी घटनाएँ स्त्री के उत्पीड़न की बड़ी दर्दनाक कहानियाँ प्रस्तुत करती हैं। अब तो यह नया तरीका गर्भ में लिंग निर्धारण या मेडिकल परीक्षण है जिसके द्वारा यह पता चल जाता है कि गर्भ में लड़का या लड़की और हजारों की संख्या में लोग, यह पता लगने पर कि गर्भ में लड़की है, गर्भापात करा लेते हैं। जन्म लेने से पहले ही महिला की हत्या हो जाती है।

भारतीय स्त्रियाँ हजारों वर्षों से इन समस्याओं का सामना करती रही हैं। इसीलिए इन्हें कमजोर वर्ग में रखा गया है। इनकी समस्याओं की गम्भीरता आज भी भारतीय समाज के सम्मुख एक प्रमुख चुनौती है।

प्र.2. लैंगिक संवेदनशीलता के आर्थिक एवं राजनीतिक पहलू कौन-से हैं? वर्णन कीजिए।

उत्तर

लैंगिक संवेदनशीलता के आर्थिक पहलू
(Economic Aspects of Sexual Sensitivity)

महिलाओं की आर्थिक स्थिति को आजकल समाज की स्थिति के विकास के एक निर्धारक के रूप में स्वीकार किया जाता है, क्योंकि महिलाएँ प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: आर्थिक क्रियाओं में योगदान देती हैं। वे समस्त पारिवारिक दायित्वों का बोझ स्वयं उठाकर पुरुषों को केवल आर्थिक क्रियाएँ सम्पादित करने का पूरा समय व अवसर प्रदान करती हैं अथवा स्वयं भी पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के साथ-साथ पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आर्थिक क्रियाओं में संलग्न होती हैं। आज भागीदारी की दृष्टि से कृषि, पशु व्यवसाय, हैण्डलूम आदि में महिलाओं के अनुपात में काफी हद तक वृद्धि हुई है। यही नहीं पिछले दशक में महिलाओं की क्रियाओं से सम्बन्धित नये आयाम उभर कर सामने आये हैं।

सम्पत्ति के अर्जन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के बावजूद महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित रखा गया। यद्यपि कानूनी तौर पर आज महिलाओं को सम्पत्ति का समान अधिकार प्राप्त है, तथापि वे आर्थिक दृष्टि से अपने जीवन के सभी कालों में पुरुष की दया पर ही आश्रित रही हैं। सम्पत्ति के अधिकार में भी विरासत से प्राप्त सम्पत्ति, वैवाहिक सम्पत्ति अथवा स्वयं अर्जित सम्पत्ति पर भी महिलाओं की तुलना में पुरुषों को अधिक अधिकार प्राप्त हैं।

आधुनिक ही नहीं वरन् आदिम समाजों में भी लिंगीय आधार पर विषमता पाई जाती थी, वहाँ श्रम-विभाजन आयु, लिंग या विशेषज्ञता के आधार पर देखने को मिलता है। पुरुष शिकार करने जंगलों में जाते थे, तो स्त्रियाँ घर की देखभाल, बच्चों का लालन-पालन, जंगलों से कन्दमूल, फल-फूल, साग-पात आदि के संचय का कार्य करती थीं। एस्किमो, अण्डमानी एवं अरूण्टा जनजाति में ऐसा ही देखने को मिलता है। आदिम समाजों में पुरुष ही शिकार का अगुवा एवं युद्ध का नेतृत्व करने का कार्य करते थे।

पितृसत्तात्मक समाजों में पिता से पुत्र को सम्पत्ति का हस्तान्तरण किया जाता है जबकि मातृसत्तात्मक समाज में मामा की सम्पत्ति का अधिकारी भानजा होता है। इस प्रकार से लिंगीय विषमता के आर्थिक स्वरूपों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक महत्त्व एवं अधिकार दिये जाते हैं।

लैंगिक संवेदनशीलता के राजनीतिक पहलू
(Political Aspects of Sexual Sensitivity)

स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति इस बात से जानी जा सकती है कि सत्ता के स्वरूप निर्धारण और उसमें भाग लेने के मामले में उन्हें कितनी समानता और आजादी प्राप्त है और इस सन्दर्भ में उनके योगदान को समाज कितना महत्त्व देता है। अत: स्पष्ट है कि पुरुषों एवं स्त्रियों की विभिन्न क्षमताओं, योग्यताओं, कार्यों तथा व्यवहार सम्बन्धों में एक विशिष्ट अन्तर है और यह अन्तर ही उनमें पारस्परिक सहयोग बनकर समाज में संगठन का कारण बना और जब-जब समय एवं परिस्थितियों से प्रभावित होकर इन विषमताओं ने विरोध एवं संघर्ष का रूप धारण किया तब-तब मानव समाज का विघटन हुआ और मानवीय संस्कृति का ह्रास हुआ। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के मूल में स्त्री एवं पुरुषों की यह लैंगिक विषमता ही है, जो विभिन्न युगों के समय एवं कालजन्य परिस्थितियों से निरन्तर प्रभावित होती आई है और यह आज भी आधुनिक रूप में वर्तमान समाज में विद्यमान है।

बम्बई भगिनी समाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर **गाँधी जी** ने कहा था कि— *"स्त्री-पुरुष की समानता का यह अर्थ नहीं है कि उनके धंधे भी एक हों। कोई स्त्री शिकार खेले या भाला चलाए तो कानून उसे मना नहीं कर सकता। लेकिन जो काम पुरुष का है, उससे वह सहज ही झिझकती है। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष को एक दूसरे का पूरक बनाया है, किन्तु उनके काम भी अलग-अलग हैं।"*

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि **गाँधी जी** नारी को समानाधिकार के संवैधानिक पक्ष में तो थे ही, किन्तु साथ ही उनका यह ध्येय यह भी था कि स्त्री और पुरुष के कार्य अलग हों। प्रकृति ने पुरुष को शक्तिशाली बनाया है, अत: उसे कठोर कार्य करना चाहिए और स्त्री को उसकी शक्ति के अनुरूप कार्य करना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि स्त्री और पुरुषों के कार्यों की अलग-अलग व्यवस्था हो। वास्तव में, पुरुषों को स्त्रियों से और स्त्रियों को पुरुषों से सलाह लेकर कार्य करना चाहिए। **गाँधी जी** स्त्री और पुरुष दोनों को अपूर्ण मानते थे। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं, दो अलग-अलग हस्तियाँ नहीं हैं। (हरिजन 28.11.36)। स्त्री और पुरुष का दर्जा समान है, पर वे एक नहीं हैं। ये ऐसी अनुपम जोड़ी है जिसमें प्रत्येक दूसरे का पूरक है।

प्र.3. लैंगिक विषमता को कम करने के लिए आप क्या सुझाव देंगे? उल्लेख कीजिए।

उत्तर

लैंगिक असमानता को कम करने हेतु सुझाव
(Suggestions for Reducing Gender Inequality)

स्त्रियों की समस्याएँ बहुत गहराई से भारतीय सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई हैं। पितृसत्तात्मक एवं पुरुष प्रधान समाज में जब तक संरचनात्मक परिवर्तन नहीं किये जाएँगे, तब तक स्त्रियों की प्रस्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होंगे। सरकार ने इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं; जैसे—संविधान में लिंगों के बीच पूर्ण समता की घोषणा, हिन्दुओं में स्त्रियों को उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार दिया जाना, हिन्दुओं में तलाक या विवाह विच्छेद के बाद भरण-पोषण को वैधानिक करना, स्त्रियों को गोद लेने का अधिकार दिया जाना, अनैतिक व्यापार दमन कानून का पारित किया जाना, हाई स्कूल तक स्त्रियों की शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था किया जाना, दहेज नियन्त्रण कानून का पारित किया जाना आदि।

परन्तु उपर्युक्त सभी कानून संसद के पुस्तकालय में पवित्र दस्तावेज के रूप में सजे हुए दिखाई पड़ते हैं क्योंकि इनका क्रियान्वयन पूरी तरह नहीं किया गया है। जब तक शक्तिशाली जनाधार तैयार नहीं किया जाएगा, तब तक स्त्रियों की प्रस्थिति को ऊपर नहीं उठाया जा सकता। पिछले कुछ वर्षों में राजस्थान में खुले आम सती काण्ड घटित होना और उसके समर्थन में राजपूत जाति के कुछ युवाओं का आन्दोलन करना, जगतगुरु शंकराचार्य जैसे पद से धर्म के नाम पर सती का पक्ष पोषण होना, इस बात का सबूत है कि स्त्रियों की प्रस्थिति में कोई अर्थपूर्ण परिवर्तन नहीं हो पाया है। ये कानून भी आधी-अधूरी भावना से बने हैं। धार्मिक सम्प्रदाय को विशेष को छूट देने से स्त्री उत्पीड़न और शोषण की निरन्तरता बनी हुई है। स्वतन्त्र भारत में एक नागरिक के रूप में स्त्री को इन पिछड़ी हुई धार्मिक बेड़ियों से मुक्ति पाने का अधिकार मिलना ही चाहिए। सन्तोष की बात यह है कि अब कुछ नये स्त्री संगठन खुद जनता में उभरे हैं और स्त्री के अधिकारों के लिए आन्दोलन चला रहे हैं।

लैंगिक असमानता एवं स्त्री सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं—

1. **वैधानिक सुधार**—स्त्री संगठनों की सहभागिता व सलाह से स्त्री सम्बन्धी एक भारतीय स्त्री अधिनियम पारित हो, जो विवाह, उत्तराधिकार, सम्पत्ति, यौन, सन्तानोत्पत्ति आदि विषयों पर स्पष्ट आदेश प्रदान करे। भारत की प्रत्येक वयस्क स्त्री को यह अधिकार दिया जाए कि वह बिना धर्म, जाति, समुदाय के भेदभाव के अपने लिए इस अधिनियम को ग्रहण कर सकती है, इसका लाभ उठा सकती है।
2. **स्त्री शिक्षा का प्रसार**—स्त्री शिक्षा न केवल अनिवार्य की जाए वरन् निर्धन परिवारों की कन्याओं को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाएँ। स्त्री छात्रावासों की व्यवस्था की जाए। इस शिक्षा का आधुनिक अर्थों में व्यावसायीकरण किया जाना चाहिए। स्कूलों के साथ ही एक उत्पादन केन्द्र भी हो, तो और भी अच्छा है। स्त्री शिक्षा का उद्देश्य स्त्री को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना होना चाहिए।
3. **रोजगार एवं स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहन**—स्त्रियों को अधिक से अधिक रोजगार के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके लिए सरकार को आरक्षण व सुरक्षात्मक भेदभाव की नीति अपनानी चाहिए। स्त्रियों को वे सब सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों व जनजातियों को मिल रही हैं।
4. **मातृत्व का मौलिक अधिकार**—प्रत्येक स्त्री को मातृत्व का मौलिक अधिकार मिले, चाहे वह विवाहित दायरे में हो या उससे बाहर। यह उसका नैसर्गिक अधिकार है, इसे संवैधानिक किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, उसे निरपेक्ष रूप से दैहिक अधिकार भी प्राप्त होना चाहिए। उसकी देह पर उसे ही स्वामित्व मिले। किसी अन्य को, चाहे वह कोई भी हो, उसकी इच्छा के विरुद्ध स्त्री के दैहिक उपयोग का अधिकार नहीं है।
5. **स्त्री-संगठनों को प्रोत्साहन एवं सहायता**—स्त्रियों को स्थानीय स्तर पर अपने संगठन बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उनके संगठनों को सहायता दी जानी चाहिए।
6. **प्रतीकों के विरुद्ध मोर्चा**—लिंग भेदभाव प्रतीकात्मक स्तर पर गहराई से अस्तित्व रखता है। इसके अनेक उदाहरण हैं; जैसे—स्त्री के नाम से पहले कुमारी या श्रीमती लिखने की बाध्यता, विवाहित स्त्री के लिए सिन्दूर, चूड़ियाँ, बिछुए एवं मंगलसूत्र की अनिवार्यता, विवाहित स्त्रियों का पति और पुत्र के लिए व्रत रखने की अनिवार्यता आदि। इसके विरुद्ध अभियान चलाया जाना चाहिए और इन सामन्तवादी या आदिकालीन अवशेषों को समाप्त किया जाना चाहिए।
7. **स्त्री सशक्तिकरण**—लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए स्त्री सशक्तिकरण एक सबल उपाय माना जाता है। आज सभी राष्ट्रों में इस ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस सशक्तिकरण हेतु स्त्रियों को निम्नलिखित प्रयास करने होंगे—

(i) स्त्रियों को उन कारणों एवं प्रक्रियाओं को आलोचनात्मक रूप में समझना होगा जो उनके सशक्तिकरण में बाधक हैं।
(ii) स्त्रियों को अपनी स्व-प्रतिष्ठा बढ़ानी होगी तथा अपने प्रति अबला होने की धारणा बदलनी होगी।
(iii) स्त्रियों को प्राकृतिक, मौद्रिक तथा बौद्धिक संसाधनों तक अपनी पहुँच बढ़ानी होगी।
(iv) स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचनाओं व प्रक्रियाओं में दखल देने सम्बन्धी अपने विश्वास, ज्ञान, सूचना तथा क्षमताओं को प्राप्त करना होगा।
(v) स्त्रियों को परिवार एवं समुदाय के अन्दर तथा बाहर निर्णय लेने सम्बन्धी प्रक्रियाओं पर अपना नियन्त्रण एवं सहभागिता बढ़ानी होगी।
(vi) स्त्रियों को उन नवीन भूमिकाओं की ओर आगे बढ़ना होगा जो अब तक केवल पुरुषों का अधिकार क्षेत्र मानी जाती रही है।
(vii) स्त्रियों को उन अन्यायपूर्ण एवं असमान विश्वासों, प्रथाओं, संरचनाओं एवं संस्थाओं को चुनौती देनी होगी तथा बदलना होगा जो लैंगिक असमानता के लिए उत्तरदायी हैं।

अन्त में, स्वयं स्त्री को ही अकेले और सामूहिक रूप से अपनी उपर्युक्त स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों का हल खोजना होगा। कोई किसी को उसके अधिकार नहीं दिला सकता। अपने अधिकार खुद लेने पड़ते हैं और उनकी रक्षा करनी पड़ती है। यह कोई सरल कार्य नहीं है। सदियों से चली आ रही सामाजिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं एवं मूल्यों को बदलना इतना सरल नहीं है, परन्तु सामूहिक प्रयास द्वारा इस लक्ष्य को प्राप्त करना असम्भव भी नहीं है।

प्र.4. 'विभिन्नता में एकता' भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर संस्कृति का एक विशेष गुण विविधताओं में एकता उत्पन्न करना है। संस्कृति पीढ़ियों से प्राप्त किसी सामाजिक समूह की शिक्षा, जो रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि में अभिव्यक्त होती है। प्रत्येक समाज की अपनी भिन्न-भिन्न संस्कृति होती है। संस्कृति उन भौतिक एवं बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है जिनके द्वारा मानव अपनी जैविक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि तथा अपने पर्यावरण से अनुकूलन करता है। यह सीखने की प्रक्रिया (समाजीकरण) द्वारा पीढ़ियों से प्राप्त सामाजिक विरासत है जो शुक्राणुओं द्वारा स्वचालित रूप से हस्तान्तरित जैविक विरासत से पूर्णत: भिन्न है। वस्तुत: संस्कृति पर्यावरण का मानव-निर्मित भाग है। यह उन तरीकों का कुल योग है जिनके द्वारा मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है। **लुंडबर्ग** के अनुसार, "संस्कृति व्यवहार की सामाजिक प्रणालियों तथा इन व्यवहारों की भौतिक एवं प्रतीकात्मक कृतियों को निर्दिष्ट करती है।"

किसी संस्कृति की एकता से हमारा तात्पर्य होता है उस संस्कृति के मूल्यों, विश्वासों, आध्यात्मिक विचारों, परम्पराओं, आचार-विचार एवं व्यवहार आदि के सम्बन्ध में विचार करना। किसी भी राष्ट्र की एकता तभी तक जीवित रह सकती है, जब तक उस देश की संस्कृति अपने आदर्शों में बँधी रहती है। अत: संक्षेप में मौलिक एकता का अर्थ है किसी भी देश के वंशों, वर्णों, जातियों, धर्मों, भाषाओं, रीति-रिवाजों, वस्त्राभूषणों तथा अन्य विभिन्नताओं में एकीकरण तथा समन्वय की स्थापना करना। एकता एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें 'एक होने की भावना' ('हम एक हैं') निहित होती है।

सांस्कृतिक विविधता से अभिप्राय किसी समाज या समुदाय की संस्कृति में पाये जाने वाले अन्तरों से है। 'विविधता' शब्द असमानताओं के बजाय अन्तरों पर बल देता है। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि भारत में सांस्कृतिक विविधता पायी जाती है तो इससे तात्पर्य वहाँ पाये जाने वाले अनेक प्रकार के सामाजिक समूहों एवं समुदायों से है जो भाषा, जाति, प्रजाति, धर्म, पन्थ आदि द्वारा परिभाषित होते हैं।

चूँकि सांस्कृतिक पहचानें अत्यन्त प्रबल होती हैं, इसलिए सांस्कृतिक विविधता किसी भी समाज या देश की मौलिक एकता हेतु एक कठोर चुनौती प्रस्तुत करती है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत 'विविधता में एकता' जैसा विशेष गुण विद्यमान है। इसी कारण भारत अपनी सांस्कृतिक धरोहर को हजारों वर्षों से सहज कर रख सका है।

भारतीय संस्कृति में विविधता अथवा बहुलता
(Diversity of Plurality in Indian Culture)

भारतीय संस्कृति अनेक प्रकार की विविधताओं से परिपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में विविधता को निम्नलिखित रूपों में समझाया जा सकता है—

1. **भारत की भौगोलिक विविधता**—भारत में बहुत ज्यादा भौगोलिक विविधता है। भारत की स्थिति जब देखते हैं तो पता चलता है इसे हम कई अलग-अलग भागों में विभाजित कर सकते हैं। भारत के उत्तर में विश्व की सबसे बड़ी पर्वत शृंखला हिमालय पर्वत श्रेणी है, साथ में उत्तर का विशाल मैदान है। वहीं मध्य भारत में दक्कन का पठार है। उत्तरी और

दक्षिणी घाट के साथ यहाँ बड़े मरुस्थलीय इलाके भी मौजूद हैं। इन सब भौगोलिक इकाइयों का तापमान, वातावरण सब कुछ अलग-अलग होता है, इसी वजह से यहाँ उगने वाली फसलें, सब्जियाँ, लोगों का रहन-सहन आदि एक दूसरे क्षेत्रों से बहुत हटकर है। भारत की भौगोलिक स्थिति में इतनी ज्यादा विविधता होने के बावजूद भी यह प्राचीन काल से ही एक है। विदेशी लोग भारत को हमेशा से ही भारतीय महाद्वीप के नाम से पुकारते हैं। कई प्राचीन लेखों में भी इसका वर्णन मिलता है और भारत की सीमा में उत्तर के हिमालय से दक्षिण के महासागर तक बताया गया है। भारत में कई सल्तनतें रही हैं, कई विदेशी आक्रमणकारियों ने हमला किया है लेकिन अपनी भौगोलिक विविधता के कारण कभी भी कोई शासक पूरे देश पर शासन नहीं कर पाया है।

2. **भारत की धार्मिक विविधता**—भारत में विभिन्न धर्मों पर आस्था रखने वाले लोग एक साथ रहते हैं। भारत में सबसे अधिक संख्या जनसंख्या हिन्दुओं की है, इसके बाद मुस्लिमों की जनसंख्या है। हिन्दू, मुस्लिम के अलावा यहाँ सिख, ईसाई, पारसी, बौद्ध के अलावा अलग-अलग पन्थ पर आस्था रखने वाले लोग रहते हैं।
   भारत में रहने वाले सभी लोग एक दूसरे के धर्मों का सम्मान करते हैं और दूसरे धर्म के लोगों को त्योहार में भी हिस्सा लेते हैं। गणपति पंडाल पर मुस्लिम लोग भी व्यवस्थाओं में हाथ बँटाते हैं। जब मुस्लिमों का सबसे प्रमुख त्योहार ईद आता है तब हिन्दू और बाकी धर्म के लोग ईद की मुबारकबाद देते हैं और अपने मुस्लिम मित्रों के यहाँ दावत खाने जाते हैं।
   भारत में इतनी ज्यादा धार्मिक विविधता देखने को जरूर मिलती है लेकिन कभी-कभी कुछ लोग इसी विविधता का गलत फायदा उठाते हैं और समाज में द्वेष फैलाने का काम करते हैं।
   लेकिन जब बात देश की आती है तो सभी धर्मों के लोग एक साथ मिलकर देश की ताकत बढ़ाते हैं। भारत में हर धर्म के लोगों के आस्था से जुड़े कुछ विशेष जगह भी मौजूद हैं। जैसे अजमेर शरीफ, बोधगया, अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर, हिन्दुओं के सभी तीर्थ स्थल मौजूद हैं। लोग अपनी आस्था के अनुरूप पूजा कर सकते हैं।
3. **भारत में भाषायी विविधता**—भारत की कुल जनसंख्या का 3/4 हिस्सा इंडो-आर्यन भाषा बोलते हैं, जबकि बाकी के 1/4 हिस्सा द्रविड़ियन भाषा बोलते हैं जो दक्षिण भारत में बोली जाती है। भारत में करीब 122 भाषाएँ और करीब 1600 बोलियाँ हैं। भाषा में इतनी विविधता कहीं और देखने को नहीं मिलती है।
   भाषा की विविधता देश की ताकत भी है और कभी-कभी कमजोरी भी बन जाती है। लेकिन फिर भी इतनी विविधता होने के बावजूद काम-काज में कोई रुकावट नहीं आती।
   अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व भी भारतीय समाज में बहुत ज्यादा है। अधिकतर लोग अंग्रेजी भाषा को उत्तर भारत और दक्षिण भारत को जोड़ने वाली भाषा मानते हैं।
   दक्षिण भारत में इंग्लिश को द्वितीय भाषा का दर्जा प्राप्त है। इन सब के बीच हिन्दी भाषा का भी एक अहम स्थान है। भारत की पहचान हिन्दी भाषा, विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है।
4. **भारत की राजनीतिक विविधता**—हम सब यह जानते हैं कि भारत देश और भारतीय समाज प्राचीन काल से इस वजह से एक था क्योंकि यहाँ की संस्कृति एक थी, सभी लोग एक ही तरह की मान्यताओं पर यकीन करते थे। इस वजह से बुनियादी रूप से भारतीय समाज हमेशा से एक था लेकिन जब बात राजनीतिक रूप से एकता की आती है तो यहाँ स्थिति बदल जाती है। हमारा देश शुरुआत से कभी भी एक ही शासक के अधीन नहीं रहा है। यहाँ तक कि जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था उस वक्त भी देश में 600 छोटी बड़ी रियासतें थीं।
   इसके पहले गुप्त शासन काल में देश एक सल्तनत के अधीन था। इसके बाद में मुगलों ने भी पूरे भारत को एक ही राजनीतिक व्यवस्था के अन्दर डालने की कोशिश की लेकिन वह भी पूरी तरह सम्भव नहीं हो सका था।
   देश की आजादी के बाद भी इस बात का ध्यान रखा गया था कि राजनीतिक स्तर पर विविधता बरकरार रहे ताकि देश के सभी लोग आजादी महसूस कर सकें।
5. **भारतीय साहित्य में विविधता**—भारत के अलग-अलग क्षेत्रों ने साहित्य के लिए भी बहुत योगदान दिया है। जैसे वेदों का निर्माण उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में, यजुर्वेद का निर्माण कुरु पांचाल क्षेत्र में, उपनिषद की रचना मगध में, गीत गोविन्द की रचना बंगाल में, चार्यपदास उड़ीसा में, कालिदास के महाकाव्य और ड्रामा की रचना उज्जैनी में हुआ था।
   इसके अलावा भी भारत में कई किताबों की रचना हुई थी, जिनमें ज्ञान-विज्ञान, कला, स्वास्थ्य आदि के बारे में जानकारी दी गई थी। इस तरह की कई किताबों को नालंदा के पुस्तकालय में इकट्ठा करके रखा गया था।

6. **भारतीय संगीत में विविधता**—भारतीय संस्कृति कितनी मिश्रित है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण भारतीय संगीत हैं, खासकर भारतीय शास्त्रीय संगीत। भारतीय संगीत में जहाँ एक तरफ भारत में ही निर्मित प्राचीन संगीत कला की छटा दिखाई देती है, वही साथ में मुगलकालीन मुस्लिम संगीत का मिश्रण एक खास अनुभव देता है।
कुछ वाद्य यन्त्र जिनका निर्माण भारत में हुआ है वे विश्व में बहुत ज्यादा प्रचलित हैं। भारतीय वीणा और पर्सियन तंबूरा से मिलकर सितार का निर्माण हुआ था। साथ ही गजल और कव्वाली के मिले-जुले रूप ने भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों को एक अलग ही अनुभव दिया है।
7. **जनजातीय विविधता**—इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया के अनुसार—'जनजाति' समान नाम धारण करने वाले परिवारों का एक संकलन है, जो समान बोली बोलते हों, एक ही भूखण्ड पर अधिकार करने का दावा करते हों अथवा दखल रखते हों तथा जो साधारणतया अन्तर्विवाही न हों यद्यपि मूल रूप में चाहे वैसे रह रहे हों। भारत की कुल जनसंख्या में लगभग आठ प्रतिशत जनजातीय लोग निवास करते हैं। भारत में ओराँव, गोंड, मुण्डा, बोरो, थारू, कूकी आदि विभिन्न जनजातियाँ देखने को मिलती हैं। कुछ जनजातियों की संख्या लाखों में है और कुछ जनजातीय परिवारों की संख्या एक हजार से भी कम है। जनजातियों के रीति-रिवाज एवं रहन-सहन ही पृथक् नहीं हैं, अपितु वे ग्रामीण तथा नगरीय संस्कृति से भी पूरी तरह से भिन्न हैं। लगभग आधी जनजातीय जनसंख्या तीन राज्यों—बिहार, ओडिशा तथा मध्य प्रदेश में निवास करती है।

भारतीय संस्कृति में एकता
(Unity in Indian Culture)

भारतीय संस्कृति में विविधता होते हुए भी मौलिक एकता की विद्यमानता के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

1. **भौगोलिक एकता**—भारत की भौगोलिक विविधता तथा अनेकरूपता ने भारतीय संस्कृति को अधिक प्रभावित किया है। भारत के उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत; भारत को एशिया के अन्य देशों से पृथक् करता है, दक्षिण में तीन ओर समुद्र होने से इसकी सीमाएँ अलग एवं सुदृढ़ हैं। प्राचीन समय में ही भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए, किन्तु भारत की भौगोलिक एकता व प्रादेशिक अखण्डता को स्थायी रूप से भंग करने में आज तक कोई सफल नहीं हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भौगोलिक दृष्टि से भारत भौगोलिक एकता को प्रदर्शित करता है।
2. **सांस्कृतिक एकता**—भारत की सांस्कृतिक एकता कोई नई बात नहीं है। यह अपनी एकता, परम्परा, प्रेम एवं सद्भाव की पूर्ण एवं उन्नति की एक गाथा है। इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक बना हुआ है तथा जब तक विश्व का अस्तित्व है, इसका अस्तित्व भी बना रहेगा। यद्यपि विश्व की अन्य सभी संस्कृतियाँ लगभग नष्ट हो चुकी हैं, जबकि भारतीय संस्कृति अमर है। समस्त भारत भूमि पर सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन का मौलिक अधिकार समान है तथा देश के सभी लोगों में वर्ण व्यवस्था, जातीय भेद, परम्पराओं आदि में भी समानता पायी जाती है। हिमालय से कन्याकुमारी तक, कश्मीर से बंगाल व असम तक संस्कृति में समानता पायी जाती है। अत: भारतीय संस्कृति में मौलिक एकता पायी जाती है, जिसके कारण यह संस्कृति विश्व में उच्च एवं अमर है। भारतवासियों में जीवन के विभिन्न पहलुओं—उत्सवों, धार्मिक संस्कारों और सामाजिक क्रिया-कलापों में सांस्कृतिक एकता दिखाई पड़ती है।
3. **जातिगत एकता**—भारत प्राचीनकाल से ही अपनी जातिगत एकता के लिए जाना जाता है। यहाँ अलग-अलग जाति के लोग निवास करते हैं फिर भी उनके बीच जातिगत एकता विद्यमान है। द्रविड़, आर्य, शबर, पुलिन्द, मंगोल, किरात, हूण, यवन, शक, अस्ब, तुर्क, पठान आदि जातियों ने यद्यपि देश के वातावरण में जातिगत विभिन्नताओं का पुट मिलाने का प्रयास किया है, तथापि भारत में इन जातियों की संस्कृतियों ने टकराव की स्थिति कभी उत्पन्न नहीं की। इसके साथ ही यह अवश्य हुआ कि जब भी किसी जाति ने भारत में प्रवेश किया तो प्रारम्भ में उसकी जातिगत भावना कमजोर होती गई तथा उसने भारतीयता में अपने को आत्मसात कर लिया। साथ ही, भारतीय संस्कृति के प्रेम, उदारता, सहिष्णुता आदि गुणों ने सभी जातियों के मध्य भावात्मक एकता को स्थापित कर दिया। इतिहास के अनेक ऐसे प्रमाण इस मान्यता की पुष्टि भी करते हैं कि भारतीय जातियों की अनेकता ने एक अद्भुत एकता स्थापित की है।
4. **भाषागत एकता**—प्राचीनकाल से ही भारत में द्रविड़, आर्य, कोल, ईरानी, यूनानी, हूण, शक, अरब, तुर्क, पठान, मंगोल, डच, फ्रेंच, अंग्रेज आदि जातियों की भाषाएँ भिन्न-भिन्न रही हैं, किन्तु भारत में निवास करने के दौरान ये जातियाँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आई जिसके उपरान्त भारत में एक ऐसी भाषा का जन्म हुआ जिसने भारत के अधिकांश लोगों की

भाषा का रूप ले लिया। प्रारम्भ में यह भाषा संस्कृत थी, किन्तु अब यह भाषा हिन्दी है। वर्तमान समय की अधिकांश भाषाओं पर संस्कृत भाषा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। बंगला, तमिल तथा तेलुगू भाषा पर संस्कृत की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। मुसलमानों के आने के साथ यहाँ फारसी भाषा का पर्दापण हुआ तथा उस पर संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रभाव के कारण उर्दू का जन्म हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीनकाल से आज तक भारत में अनेक भाषाओं का आगमन व जन्म हुआ, किन्तु उनके बीच किसी प्रकार से टकराव नहीं हुआ बल्कि इन्होंने एक दूसरे को सहयोग प्रदान किया।

5. **राजनीतिक एकता**—भारत में समयानुसार राजतन्त्रों में परिवर्तन के साथ-साथ शासन प्रणाली में भी परिवर्तन हुआ। मुगलों के समय तक देश में राजतन्त्रात्मक प्रणाली की प्रधानता रही। अंग्रेजों के शासनकाल में परोक्ष रूप से तानाशाही प्रणाली का जोर रहा, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में लोकतन्त्रीय प्रणाली का प्रचलन हुआ। यद्यपि अनेक शासन प्रणालियाँ भारतीय राजनीतिक वातावरण में उदित हुईं, तथापि एकता की भावना सदैव बनी रही। मौर्य व गुप्त साम्राज्य भारत की राजनीतिक एकता के मुख्य उदाहरण हैं। भारत में प्रजातन्त्रीय प्रणाली अपनाये जाने के बाद अनेक राजनीतिक विचारधाराओं के राजनीतिक संगठन तथा दलों का उदय हुआ। यद्यपि इन दलों में वैचारिक मतभेद हो सकते हैं, तथापि सभी राजनीतिक दल भारत की राजनीतिक एकता को सर्वोपरि मानते हैं।
6. **धार्मिक एकता**—भारत में हमेशा से ही अनेक धर्मों एवं धार्मिक सम्प्रदायों की विद्यमानता रही है, किन्तु विभिन्न धर्मों के मतानुयायी अपनी धार्मिक विभिन्नता के बावजूद स्वयं को भारतीय मानते हैं। प्रत्येक धर्म के अपने-अपने अलग विश्वास, दर्शन, उपासना तथा पूजन विधियाँ हैं। उदाहरणार्थ हिन्दू धर्म में ही शैव, वैष्णव, आर्यसमाजी, नानकपन्थी, कबीरपन्थी इत्यादि विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस्लाम धर्म में भी शिया और सुन्नी इत्यादि सम्प्रदायों को मानने वाले मुसलमान हैं और यहाँ तक कि जैन धर्म, बौद्ध धर्म, पारसी तथा ईसाई धर्मों के मानने वाले भी भारतवासी हैं। विभिन्न धर्मों को मानने वाले सभी लोग भारत में निवास करते हैं। भारत की धार्मिक एकता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इसमें निहित है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। प्रायः यह भी देखने को मिलता है कि भारतवर्ष के सभी धर्म एक ही सत्ता में विश्वास करते हैं। जैसे—सभी धार्मिक स्थान पवित्र माने जाते हैं, सभी धर्मों में दया करने की शिक्षा दी जाती है। सभी धर्म उदारता एवं सहिष्णुता पर बल देते हैं, सभी धर्मों के लोग एक-दूसरे के धार्मिक ग्रन्थों का आदर-सम्मान करते हैं, सभी धर्मों के मन्दिर, मस्जिद, चर्च और तीर्थ स्थान एक ही भारत भूमि में चारों ओर फैले हुए हैं। यह भारत की धार्मिक एकता का सबसे बड़ा उदाहरण है।
7. **राष्ट्रीय एकता**—राष्ट्रवादियों का मत है—"व्यक्ति राष्ट्र के लिए होता है, परन्तु राष्ट्र व्यक्ति के लिए नहीं होता है।" इस विचार से प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र का अभिन्न अंग होता है। राष्ट्रीय एकता से आशय एक राष्ट्रीयता से है। इसलिए कभी-कभी राष्ट्र की सामूहिक एकता को आध्यात्मिक भावना की संज्ञा भी दी जाती है। राष्ट्रीय एकता अपने देश के लोगों को साथ-साथ रहने के लिए बाध्य करती है। राष्ट्रीयता का अर्थ होता है कि हम भारतीय पहले हैं अन्य कुछ बाद में। साथ-ही-साथ यह भावना एक अमुक राष्ट्र के सभी नागरिकों को एक समान राजनीतिक संगठन के अन्तर्गत रहने के लिए भी बाध्य करती है। यह भावना ऐतिहासिक परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न होती है। भारत में भी यह भावना हमें देखने को मिलती है। जब कभी भी भारत पर संकट का समय आया, तभी भारत के सभी नागरिक एकता के सूत्र में बँध गये, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र, भाषा, प्रान्त, नगर और गाँव के क्यों न थे। संकटकालीन अवस्था में तो भारतीय जनजातियों को भी एक सूत्र में बँधे देखा गया है। उदाहरण के लिए भारत-पाक संघर्ष अथवा भारत-चीन युद्ध के समय राष्ट्रीय एकता भारत के प्रत्येक नागरिक में दिखाई दी।

   उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक विषमताएँ हैं लेकिन फिर भी भारत में सब ओर मौलिक एकता उपस्थित है।
8. **सामाजिक-आर्थिक एकता**—भारत की सामाजिक इकाइयों के रूप में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, पारसी, बौद्ध आदि में सामाजिक विश्वास, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि में अनेक विभिन्नताएँ हैं, इसके बाद भी उनके पारस्परिक सम्बन्धों में उदारता एवं मधुरता का भाव पाया जाता है। वास्तव में भारतीय समाज का आदर्श व स्वरूप मानव-कल्याण व लोकहित की भावना से प्रेरित है।

प्राचीनकाल में आर्थिक दृष्टि से समस्त भारतीयों की दशा अधिक सन्तोषजनक नहीं थी, तथापि आर्थिक विषमता के होते हुए भी समाज में आर्थिक सन्तोष था। किन्तु आधुनिक युग में आर्थिक विषमता का प्राबल्य बना हुआ है तथा आर्थिक समता की बात को स्वीकार करना कठिन है। विषमता को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि इस बढ़ती हुई आर्थिक विषमता को कम किया जाए, अन्यथा इस संस्कृति की स्थिरता के लिए एक गम्भीर संकट उत्पन्न हो सकता है।

प्र.5. भारतीय समाज एवं संस्कृति में पायी जाने वाली क्षेत्रीय भिन्नताओं के बारे में आप क्या जानते हैं? इनका सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

***अथवा* भारतीय संस्कृति पर क्षेत्रीय विभिन्नताओं के प्रभाव का विस्तृत वर्णन कीजिए।**

उत्तर

भारतीय संस्कृति में क्षेत्रीय विविधता
(Regional Diversity in Indian Culture)

भारत एक विशाल देश है। भारत की मुख्य भूमि चार खण्डों में बँटी हुई है—विस्तृत हिमालय प्रदेश, सिन्धु और गंगा का मैदान, रेगिस्तानी क्षेत्र तथा दक्षिणी प्रायद्वीप। इन्हें हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं—

1. **विस्तृत हिमालय प्रदेश**—हिमालय भारत में स्थित एक प्राचीन पर्वत श्रृंखला है। हिमालय को पर्वतराज भी कहते हैं जिसका अर्थ है पर्वतों का राजा। हिमालय पर्वत भारत के उत्तर में स्थित है। यह पर्वत तन्त्र मुख्य रूप से तीन समान्तर श्रेणियों—महान हिमालय, मध्य हिमालय और शिवालिक से मिलकर बना है, जिनके बीच बड़े-बड़े पठार और घाटियाँ हैं, जिनमें कश्मीर और कुल्लू जैसी कुछ घाटियाँ उपजाऊ, विस्तृत और प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न हैं। इस पर्वतीय क्षेत्र में कश्मीर, टिहरी, कुमाऊँ, नेपाल, सिक्किम तथा भूटान के प्रदेश सम्मिलित किये जाते हैं। यह पर्वतीय श्रृंखला लगभग 2,400 किलोमीटर की दूरी में फैली हुई है और 240 से 230 किलोमीटर तक चौड़ी है। पूर्व में भारत और म्यांमार (बर्मा) तथा भारत में बंगलादेश के बीच की पहाड़ी श्रृंखलाओं की ऊँचाई कम है।
2. **सिन्धु और गंगा का मैदान**—सिन्धु-गंगा का मैदान, जिसे उत्तरी मैदानी क्षेत्र तथा उत्तरी भारतीय नदी क्षेत्र भी कहा जाता है, एक विशाल एवं उपजाऊ मैदानी क्षेत्र है। यह वह क्षेत्र है जिसमें सिन्धु, गंगा व ब्रह्मपुत्र नदियाँ बहती हैं अथवा इनकी सहायक नदियों द्वारा सिंचाई होती है। उत्तर प्रदेश, दिल्ली व पंजाब आदि क्षेत्रों को इसमें सम्मिलित किया जाता है। यह भी 2,400 किलोमीटर लम्बा और 240 से 320 किलोमीटर चौड़ा मैदान है।
3. **रेगिस्तानी क्षेत्र**—इस क्षेत्र में राजस्थान तथा अरावली पर्वत श्रेणियों को शामिल किया जाता है तथा इसका अधिकांश भाग रेत से भरा है अर्थात् रेगिस्तानी है। इस क्षेत्र को विशाल रेगिस्तान और लघु रेगिस्तान में भी विभाजित किया जाता है। विशाल रेगिस्तान कच्छ के रन के पास से उत्तर की ओर लूनी नदी तक फैला हुआ है। राजस्थान-सिन्ध की पूरी सीमा इसी रेगिस्तान के साथ-साथ है। लघु रेगिस्तान जैसलमेर और जोधपुर के बीच में लूनी नदी से आरम्भ होकर उत्तर की ओर फैला हुआ है।
4. **दक्षिणी प्रायद्वीप**—यह क्षेत्र सिन्धु और गंगा के मैदानों से पृथक् हो जाता है। विन्ध्याचल पर्वत उत्तर और दक्षिण भारत को अलग करती है। नर्मदा, ताप्ती, महानदी गोदावरी आदि नदियाँ इसी प्रदेश में बहती हैं।

भारत के पश्चिम तथा पूर्व में समुद्र है। समुद्र के किनारे तथा मैदानों के पास पहाड़ियाँ हैं। इन्हें पूर्वी घाट व पश्चिमी घाट के नाम से भी पुकारा जाता है। इन प्रदेशों में मौसम अच्छा और उपजाऊ है। यदि हम भारतवर्ष को क्षेत्रीय विभाजन के आधार पर देखें तो हमें निम्नलिखित प्रमुख भिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं—

1. क्षेत्रीय भिन्नता के कारण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व असमान है। गंगा-सिन्धु के मैदानों के उपजाऊ होने के कारण जनसंख्या का घनत्व; पहाड़ी प्रदेशों व रेगिस्तानों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है।
2. देश के अलग-अलग भागों में विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती है अत: इसी कारण उनमें वनस्पति और रहन-सहन के तरीकों में भिन्नता देखने को मिलती है।
3. क्षेत्रीय विभिन्नता एवं उनकी जलवायु व सुविधाओं के अनुकूल ही विभिन्न प्रकार के व्यवसाय पनपते हैं। पहाड़ों पर लकड़ी व जड़ी-बूटी का व्यवसाय, ऊनी व मोटे कपड़ों को धारण करना, मैदानों में यातायात की सुविधा के कारण विभिन्न प्रकार के व्यवसाय करना, रेगिस्तान में खजूर उत्पन्न करना और हल्के कपड़े पहनना तथा समुद्री किनारों पर मछली पकड़ना आदि बातें क्षेत्रीय विभिन्नता के कारण ही हैं।

4. विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न प्रकार के विश्वासों, रीति-रिवाजों इत्यादि का पाया जाना भी क्षेत्रीय भिन्नता का ही परिणाम है।
5. क्षेत्रीय विभिन्नता ने भारत के लोगों के शारीरिक लक्षणों को भी प्रभावित किया है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न कद, रंग तथा बनावट के लोगों का पाया जाना क्षेत्रीय भिन्नता का ही परिणाम है।

क्षेत्रीय विभिन्नताओं का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव
(Effect of Regional Differences of Indian Culture)

भारतीय संस्कृति को क्षेत्रीय विभिन्नताओं ने अनेक प्रकार से प्रभवित किया है। प्रमुख प्रभाव इस प्रकार हैं—

1. **संस्कृति की रक्षा**—विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्ति विभिन्न रीति-रिवाजों का पालन करते हैं और अपनी-अपनी संस्कृति की रक्षा करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति की रक्षा होती रही है।
2. **सीमाओं की सुरक्षा**—उत्तर व दक्षिण की सीमाओं पर पर्वत व समुद्र होने के कारण बहुत काल तक भारतीय सीमाओं की सुरक्षा बनी रही है। इन प्राकृतिक सीमाओं के कारण ही विदेशी लोगों ने बहुत काल तक भारत पर आक्रमण नहीं किया।
3. **सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याएँ**—क्षेत्रीय विभिन्नता के कारण भारत में संस्कृति, भाषा, धर्म, प्रदेश, क्षेत्र आदि के विषय को लेकर वाद-विवाद किये जाते हैं जिससे देश को विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।
4. **संकीर्णता**—विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्ति विभिन्न रीति-रिवाजों का पालन करते हैं और इस प्रकार अपनी उपसंस्कृति की रक्षा करते हैं। क्षेत्रीय महत्त्व के कारण वे अन्य क्षेत्रीय लोगों के विचारों को सहन नहीं करते, इसलिए भारत में स्थानीयता का प्रभुत्व हो गया और विचारों में संकीर्णता आ गई। आज भी यही संकीर्ण भावनाएँ क्षेत्रीयता अथवा प्रादेशिकता की संकीर्ण भावना के प्रसार के लिए पर्याप्त सीमा तक उत्तरदायी हैं।
5. **सांस्कृतिक विघटन**—भारत एक विशाल देश है, जिसमें विभिन्न संस्कृतियों के लोग रहते हैं। ये लोग अपने-अपने क्षेत्र की उपसंस्कृति की ही रक्षा करते हैं। क्षेत्रीय भावना के कारण एक क्षेत्र के लोग इतने अन्धविश्वासी होते हैं कि दूसरी उपसंस्कृति में पाये जाने वाले गुणों की उपेक्षा करने में भी इनको किसी प्रकार का संकोच नहीं होता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत को प्रकृति ने एक दुर्ग के समान बनाया है। उत्तर में विशाल एवं अजेय हिमालय, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा म्यांमार (बर्मा) की पहाड़ियाँ एवं पश्चिम में अरब सागर इसकी सीमाओं के रक्षक हैं। चारों ओर से प्राकृतिक सीमाओं से घिरा हुआ देश भारत अपनी संस्कृति की रक्षा करने में सफल रहा है। आज के भारत में भी इसकी प्राचीनतम संस्कृति के अवशेष देखने को मिलते हैं। किन्तु इस देश में विभिन्न प्रकार की जलवायु वाले विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने से देश विभिन्नताओं का एक संग्रहालय बन गया है। इन क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण देश में राष्ट्रीयता की भावना का विकास बहुत काल तक नहीं हुआ। आधुनिक समय में भी क्षेत्रीयता, भाषावाद, नदियों के जल के बँटवारे आदि समस्याओं ने भारत में प्रजातन्त्र के विकास में बाधा पहुँचायी है व इससे राष्ट्र निर्बल हुआ है। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम क्षेत्रीय हितों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु अपने आप को समर्पित कर दें।

प्र.6. राष्ट्रीयता से आपका क्या तात्पर्य है? राष्ट्रीयता के प्रमुख निर्माणक तत्त्वों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
***अथवा* राष्ट्रीयता की परिभाषा दीजिए और इसके विकास में जो तत्त्व उत्तरदायी हैं, उनका विश्लेषण कीजिए।**
***अथवा* राष्ट्रीयता किसे कहते हैं? इसके विभिन्न पोषक तत्त्वों की विवेचना कीजिए।**

उत्तर

राष्ट्रीयता (Nationality)

जब कोई समाज सर्वशक्तिमान हो जाता है और एक भौगोलिक सीमा के अन्दर समस्त व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँध लेता है तो उसे राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार राष्ट्र वह सत्ता अथवा शक्ति है जो मनुष्य को एकता के सूत्र में बाँधती है—मनुष्य अपने पारस्परिक जाति-भेद, प्रान्त-भेद, व्यक्ति-हित आदि को छोड़कर और सामूहिकीकरण की भावना से ओत-प्रोत होकर राष्ट्र की सत्ता को स्वीकार करते हैं तथा उसके उत्थान के लिए योगदान करते हैं। व्यक्तियों तथा सामाजिक शक्तियों के योग से राष्ट्र एक स्वतन्त्र, सबल तथा भौतिक अस्तित्व धारण करता है। समस्त नागरिकों को अपने नियन्त्रण में रखता है। ऐसे राष्ट्र में व्यक्तियों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। वे राष्ट्र के अंग हो जाते हैं। **रॉस** के शब्दों में राष्ट्रीयता एक मानव विचार अथवा

प्रेरणा है, जिससे प्रभावित होकर एक देश के रहने वाले आपस में एक-दूसरे से एक राष्ट्र के नागरिक होने के नाते सद्भावना रखते हैं और मिल-जुल देश की उन्नति, उसकी सुरक्षा एवं कल्याण के लिए सक्रिय रहते हैं। दूसरे शब्दों में, जिससे प्रभावित होकर व्यक्ति अपने राष्ट्र से प्रेम करते हैं और उसके विकास में सहायक होते हैं। कुछ लोग राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम को एक ही अर्थ में लेते हैं, यह उनकी भूल है। देश-प्रेम का तात्पर्य उस स्थान एवं भूमि से प्रेम करने से है, जहाँ व्यक्ति उत्पन्न हुआ है और राष्ट्रीयता का तात्पर्य जन्मभूमि के साथ-साथ राष्ट्र की मानव जाति, संस्कृति, भाषा, विचार, साहित्य, धर्म आदि से प्रेम करने से है। **बूबेकर** के कथनानुसार, **''राष्ट्रीयता में देश प्रेम से कई गुनी अधिक देश भक्ति की मात्रा होती है।''** राष्ट्रीयता में देश प्रेम तथा देशभक्ति के तत्त्व निहित होते हैं।

राष्ट्रीयता का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Nationality)

राष्ट्रवादियों का मत है—**''व्यक्ति राष्ट्र के लिए होता है, परन्तु राष्ट्र व्यक्ति के लिए नहीं होता है।''** इस विचार से प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र का अभिन्न अंग होता है। राष्ट्र से पृथक् होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता है। व्यक्तियों से मिलकर राष्ट्र बनता है। प्रत्येक व्यक्ति का राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य होता है कि वह राष्ट्र की अखण्डता को बनाये रखने में पूर्ण सहयोग प्रदान करे और राष्ट्र को शक्तिशाली बनाये।

किसी राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए राष्ट्रीयता की भावना का विकास होना आवश्यक है। **राष्ट्रीयता का अर्थ होता है कि हम भारतीय पहले हैं अन्य कुछ बाद में।** राष्ट्रीयता एक ऐसा भाव पक्ष या शक्ति है, जो व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत हितों को त्यागकर राष्ट्र हित तथा राष्ट्र कल्याण के लिए प्रेरित करता है। राष्ट्रीय भावना विकसित हो जाने से राष्ट्र की सभी समाज की छोटी-बड़ी संस्थायें अपनी संकुचित सीमा से ऊपर उठकर राष्ट्र के हित में सहयेाग करती है और अपने को राष्ट्र का अंग समझने लगती है। राष्ट्रीयता और देश प्रेम को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। देश-प्रेम का अर्थ जन्म भूमि से प्रेम करना होता है, परन्तु राष्ट्रीयता का अर्थ राष्ट्रीय एकीकरण सामाजिक संगठन के रूप में बाँधकर सरकार की नीतियों का अनुपालन करना और उनका प्रसार करना है। राष्ट्रीयता का अर्थ होता है राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य परायणता एवं सेवाभाव है। इसे राष्ट्रीय प्रतिबद्धता भी कहते हैं।

बूबेकर ने लिखा है—''राष्ट्रीयता शब्द की प्रसिद्धि विशेष रूप से फ्रांस की क्रान्ति के बाद हुई। साधारण रूप में राष्ट्रीयता राष्ट्र-प्रेम की अपेक्षा देश-भक्ति के अधिक समीप है। राष्ट्रीयता के स्थान के सम्बन्ध के अतिरिक्त प्रजाति, भाषा, धर्म, संस्कृति तथा परम्पराओं के भी सम्बन्ध आ जाते हैं, परन्तु राष्ट्रीयता की भावना इन सब सम्बन्धों से ऊपर है।''

राष्ट्रीयता के मुख्य निर्माणक तत्त्व
(Main Building Blocks of Nationality)

लगभग सभी विद्वानों के विचारानुकूल भारत में विभिन्नताएँ होते हुए भी यहाँ एक आधारभूत एकता है। **हरबर्ट रिजले** के कथनानुसार, **''भारत में भौगोलिक सामाजिक, भाषा, धर्म आदि की विभिन्नताएँ होते हुए भी यहाँ जीवन की एकता है।''** इस एकता के कई प्रमुख निर्माणक तत्त्व हैं, जो राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायक होते हैं।

1. **प्रजातीय एकता**—राष्ट्रीय भावना के विकास में प्रजातीय एकता विशेष रूप से सहायक होती है। एक प्रजाति के व्यक्तियों में परस्पर प्रेम और एकता की भावना होती है। उनमें रुधिर का सम्बन्ध होता है। ये विशेषताएँ उन्हें एकता के सूत्र में बाँधती हैं।
2. **भाषा की एकता**—राष्ट्रीय भावना के विकास की दृष्टि से भाषा की एकता भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। एक ही भाषा के बोलने वाले व्यक्ति एक-दूसरे के अत्यन्त निकट होते हैं। यहाँ भषा की एकता न होने पर भी राष्ट्रीय भावना पर्याप्त मात्रा में हैं।
3. **भौगोलिक एकता**—राष्ट्रीयता की भावना के विकास में भौगोलिक स्थिति का भी विशेष महत्त्व है। जब किसी देश के निवासी एक ऐसे देश में रहते हैं, जो प्राकृतिक सीमाओं के कारण दूसरे देशों से पृथक होते हैं तो उनमें परस्पर प्रेम की भावना रहती है और यही प्रेम की भावना उन्हें राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधे रहती है।
4. **धार्मिक एकता**—राष्ट्रीय भावना के विकास में अन्य तत्त्वों के समान धार्मिक एकता भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। धार्मिक विश्वास एवं एकता निवासियों को एकता के सूत्र में बाँधती है। मुस्लिम देश इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि धार्मिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय एकता पनप ही नहीं सकती। भारत विभिन्न धर्मों के अनुयायियों का देश है। फिर भी यहाँ के नागरिकों में राष्ट्रीय भावना प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं।

5. **सांस्कृतिक एकता**—देश के सांस्कृतिक तत्त्व जैसे आचार-विचार, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, परम्परा, खान-पान, विश्वास, आदर्श भी राष्ट्रीय एकता की स्थापना में सहायक होते हैं। ये तत्त्व नागरिकों की परस्पर मत-भेद, लड़ाई-झगड़ा, द्वेष, धार्मिक कट्टरता आदि से रक्षा करते हैं और उसके अन्दर अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय भावना का विकास करते हैं।

प्र.7. राष्ट्रीय एकता बनाये रखने के क्या उपाय हैं? उल्लेख कीजिए।

उत्तर

राष्ट्रीय एकता बनाये रखने के उपाय
(Measures to Maintain National Integrity)

वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए निम्नलिखित उपाय प्रस्तुत हैं—

1. **सर्वधर्म समभाव**—विभिन्न धर्मों में जितनी भी अच्छी बातें हैं, यदि उनकी तुलना अन्य धर्मों की बातों से की जाये तो उनमें एक अद्भुत समानता दिखाई देगी; अत: हमें सभी धर्मों का समान आदर करना चाहिए। धार्मिक या साम्प्रदायिक आधार पर किसी को ऊँचा या नीचा समझना नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से एक पाप है। धार्मिक सहिष्णुता बनाये रखने के लिए गहरे विवेक की आवश्यकता है। सागर के समान उदार वृत्ति रखने वाले इनसे प्रभावित नहीं होते।
2. **समष्टि-हित की भावना**—यदि हम अपनी स्वार्थ-भावना को त्यागकर समष्टि-हित का भाव विकसित कर लें तो धर्म, क्षेत्र, भाषा और जाति के नाम पर न सोचकर समूचे 'राष्ट्र' के नाम पर सोचेंगे और इस प्रकार अलगाववादी भावना के स्थान पर राष्ट्रीय भावना का विकास होगा, जिससे अनेकता रहते हुए भी एकता की भावना सुदृढ़ होगी।
3. **एकता का विश्वास**—भारत में जो दृश्यमान् अनेकता है, उसके अन्दर एकता का भी विकास है—इस बात का प्रचार ढंग से किया जाये, जिससे कि सभी नागरिकों को अन्तर्निहित एकता का विश्वास हो सके। वे पारस्परिक प्रेम और सद्भाव द्वारा एक-दूसरे में अपने प्रति विश्वास जगा सकें।
4. **शिक्षा का प्रसार**—छोटी-छोटी व्यक्तिगत द्वेष की भावनाएँ राष्ट्र को कमजोर बनाती हैं। शिक्षा का सच्चा अर्थ एक व्यापक अन्तर्दृष्टि व विवेक हैं। इसलिए शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थी की संकुचित भावनाएँ शिथिल हों। विद्यार्थियों को मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा के साथ एक अन्य प्रादेशिक भाषा का भी अध्ययन करना चाहिए। इससे भाषायी स्तर पर ऐक्य स्थापित होने से राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ होगी।
5. **राजनीतिक छलछद्मों का अन्त**—विदेशी शासनकाल में अंग्रेजों ने भेदभाव फैलाया था, किन्तु अब स्वार्थी राजनेता ऐसे छलछद्म फैलाते हैं कि भारत में एकता के स्थान पर विभेद ही अधिक पनपता है। ये राजनेता साम्प्रदायिक अथवा जातीय विद्वेष, घृणा और हिंसा भड़काते हैं और सम्प्रदाय विशेष का मसीहा बनकर अपना स्वार्थ-सिद्ध करते हैं। इस प्रकार राजनीतिक छलछद्मों का अन्त राजनीतिक वातावरण के स्वच्छ होने से भी एकता का भाव सुदृढ़ करने में सहायता मिलेगी। उपर्युक्त उपायों से भारत की अन्तर्निहित एकता का सभी को ज्ञान हो सकेगा और सभी उसको खण्डित करने के प्रयासों को विफल करने में अपना योगदान कर सकेंगे। इस दिशा में धार्मिक महापुरुषों, समाज-सुधारकों, बुद्धिजीवियों, विद्यार्थियों और महिलाओं को विशेष रूप से सक्रिय होना चाहिए तथा मिल-जुलकर प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने पर सबल राष्ट्र के घटक स्वयं भी अधिक पुष्ट होंगे।

   राष्ट्रीय एकता की भावना एक श्रेष्ठ भावना है और इस भावना को उत्पन्न करने के लिए हमें स्वयं को सबसे पहले मनुष्य समझना होगा, क्योंकि मनुष्य एवं मनुष्य में असमानता की भावना समस्त विद्वेष एवं विवाद का कारण है। इसीलिए जब तक हममें मानवीयता की भावना विकसित नहीं होगी, तब तक राष्ट्रीय एकता का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। यह भाव उपदेशों, भाषणों और राष्ट्रीय गीत के माध्यम से सम्भव नहीं।

प्र.8. मानवाधिकार से आपका क्या तात्पर्य है? मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की विवेचना कीजिए।

उत्तर 'अधिकार' सामाजिक जीवन की वे दशाएँ तथा सुविधाएँ हैं जिनके अभाव में कोई भी व्यक्ति अपना समुचित विकास नहीं कर सकता। बिना अधिकारों के मानव का जीवन पशु के समान है। अत: अधिकार मानव जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जों उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए नितान्त आवश्यक हैं। राज्य भी अपनी ओर से यह प्रयास करता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो अत: वह व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास करता है। राज्य द्वारा व्यक्तियों को दी जाने वाली सुविधाओं को ही अधिकार कहते हैं।

मानवाधिकारों की घोषणा सबसे पहले अमेरिका तथा फ्रांस की क्रान्तियों के पश्चात् हुई। इसके बाद मानव के महत्त्वपूर्ण अधिकारों को विश्व समुदाय के द्वारा स्वीकार किया गया। 1941 ई० में अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने मानव को चार स्वतन्त्र अधिकारों को प्रदान करने का समर्थन किया—

1. धर्म तथा विश्वास का अधिकार,
2. भाषण तथा विचार अभिव्यक्ति का अधिकार,
3. भय से स्वतन्त्रता का अधिकार,
4. अभाव से स्वतन्त्रता का अधिकार।

मानव के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास के लिए ये चारों अधिकार आवश्यक हैं तथा विश्व के सभी देशों के सभी व्यक्तियों को प्रत्येक दशा में प्राप्त होने चाहिए। अटलाण्टिक चार्टर से लेकर द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के पूर्व अनेक सम्मेलनों में मित्र राष्ट्रों के द्वारा मानव के विभिन्न अधिकारों तथा आधारभूत स्वतन्त्रताओं पर बल दिया गया।

विश्व-शान्ति तथा सुरक्षा के लिए 1944 ई० में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना के साथ-साथ यह भी कहा गया था कि मानव अधिकारों को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ मूलभूत उद्देश्य स्वीकार किये जाने चाहिए जब दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् 1945 ई० में संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणा पत्र तैयार किया गया तो मानवाधिकारों तथा मूलभूत स्वतन्त्रताओं की आवश्यकताओं को भी विस्तृत रूप से स्वीकार किया गया।

मानवाधिकार का तात्पर्य
(Meaning of Human Rights)

मानव अधिकारों के अर्थ को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

"मानवाधिकार से व्यक्ति के जीवन (प्रण), स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बन्धित ऐसे अधिकार अभिप्रेरित हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निहित हैं तथा भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।"

अधिकारों के प्राप्त होने से नागरिकों के चहुँमुखी विकास का मार्ग खुल जाता है। जब मानव के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक दशाएँ और सुविधाएँ राज्य (सरकार) द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं तो वे मानवाधिकार का रूप धारण कर लेती है।

संयुक्त राष्ट्र (United Nations) के चार्टर से मानवाधिकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्पष्ट की गई हैं—

1. चार्टर की प्रस्तावना में 'मानव के मौलिक अधिकारों, मानव के व्यक्तित्व के गौरवपूर्ण महत्त्व में पुरुष तथा महिलाओं के लिए समान अधिकारों' की बात स्पष्ट की गई है।
2. **अनुच्छेद 1** में उल्लेख है, "मानवाधिकारों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना तथा जाति, लिंग, भाषा तथा धर्म के भेदभाव के बिना मूलभूत अधिकारों को बढ़ावा देना तथा प्रोत्साहित करना।"
3. **अनुच्छेद 13** में मौलिक स्वतन्त्रताओं को प्रदान करने की बात कही गई है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद 55, 56 तथा 62 में मानवाधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा पर बल दिया गया है। चार्टर के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र को मानवाधिकारों के सम्बन्ध में केवल प्रोत्साहन देने का ही अधिकार है, कोई कार्यवाही करने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु राज्य नागरिकों को जो सुविधाएँ प्रदान करता है उसे ही अधिकार कहते हैं।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा
(Universal Declaration of Human Rights)

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर द्वारा मानवाधिकारों की बातों को स्वीकार करने के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र के 'मानवाधिकार आयोग' (U.N. Commission on Human Rights) को मानवाधिकारों के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रारूप तैयार करने का कार्य दिया गया। इस प्रारूप को महासभा ने कुछ संशोधनों के साथ 10 दिसम्बर, 1948 ई० को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। मानवाधिकार घोषणा-पत्र में नागरिकों के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अधिकारों जैसे कार्य के बाद समान पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार, मजदूर संगठनों (Trade Unions) के गठन का अधिकार, शिक्षा तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, विश्राम तथा सामाजिक भरण-पोषण का अधिकार, विचार, धर्म, शान्तिपूर्वक सभाएँ करने तथा संगठन बनाने की स्वतन्त्रता का अधिकार आदि के विषय में उल्लेख किया गया है।

यह बात विश्व के सभी राष्ट्रों को विदित है कि 30 अनुच्छेदों की यह घोषणा सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए ऐसा सर्वमान्य मानदण्ड बनेगी जिसे वे प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

संयुक्त राष्ट्र के 30 अनुच्छेदों में मानवाधिकार का किसी-न-किसी रूप में वर्णन किया गया है—

सभी मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र हैं तथा अधिकार व मर्यादा में समान हैं। उनमें विवेक व बुद्धि है; अत: उन्हें एक-दूसरे के साथ सम्मान का व्यवहार करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति बिना जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या सामाजिक उत्पत्ति, जन्म या किसी दूसरे प्रकार के भेदभाव के बिना सभी प्रकार के अधिकारों तथा स्वतन्त्रता का पात्र है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन, स्वाधीनता तथा सुरक्षा का अधिकार रखता है। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को दासता के बन्धन में नहीं बाँधेगा।

प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त होगा कि संविधान या कानून के द्वारा जो मौलिक अधिकार उन्हें प्रदान किये गये हैं, उनको समाप्त करने वाले कार्य नहीं करेगा। किसी व्यक्ति की गैर-कानूनी गिरफ्तारी, कैद या निष्कासन न हो सकेगा। प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायालय द्वारा अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के लिए और अपने विरुद्ध आरोपित किसी अपराध के निर्णय के लिए उचित तथा स्वतन्त्र रूप से सुने जाने का समान अधिकार है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने राज्य की सीमा के अन्दर आवागमन और विकास की स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त होगा। प्रत्येक व्यक्ति को प्रताड़ना से बचने हेतु किसी भी देश में आश्रय लेने और सुख से रहने का अधिकार है। कोई व्यक्ति अपनी नागरिकता से मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जायेगा और न ही उसको नागरिकता परिवर्तन करने के लिए मान्य अधिकार से वंचित किया जायेगा।

वयस्क अवस्था वाले पुरुषों और स्त्रियों को जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की सीमा के बिना विवाह करने तथा परिवार का निर्माण करने का अधिकार प्राप्त है। उन्हें विवाह करने और वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद के समान अधिकार हैं। प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति रखने का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को वाक् एवं अभिव्यक्ति, धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपने धर्म या मत को परिवर्तित करने की स्वतन्त्रता और अपने धर्म तथा मत का उपदेश, प्रयोग, पूजा और परिपालन सर्वसाधारण के सामने या एकान्त में करने की स्वतन्त्रता अन्तर्निहित है।

प्रत्येक व्यक्ति को शान्तिपूर्ण ढंग से सभा करने की स्वतन्त्रता है। साथ ही किसी भी व्यक्ति को किसी संस्था में सम्मिलित होने के लिए विवश नहीं किया जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने, अपनी आजीविका के लिए अपना व्यवसाय चुनने, कार्य की उचित एवं अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त करने और बेकारी से बचने का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम व अवकाश प्राप्त करने का अधिकार है, साथ ही कार्य के घण्टों का समुचित निर्धारण तथा अवधि के अनुसार वेतन सहित अवकाश का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसे जीवन-स्तर की व्यवस्था करने का अधिकार है जो उसके और उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं सुख के लिए अपरिहार्य हो।

प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। शिक्षा कम-से-कम प्रारम्भिक अवस्था में निःशुल्क होगी। तकनीकी, व्यावसायिक या अन्य प्रकार की शिक्षा की सामान्य उपलब्धि की व्यवस्था की जायेगी और योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा सभी को समान रूप से प्राप्त होंगी। शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानवाधिकारों एवं मौलिक स्वतन्त्रताओं की प्रतिष्ठा बढ़ाना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को समाज के सांस्कृतिक जीवन में स्वतन्त्रतापूर्वक प्रतिभाग करने व कलाओं का आनन्द प्राप्त करने तथा वैधानिक विकास से लाभ प्राप्त करने का अधिकार है।

उपर्युक्त अधिकारों के सम्बन्ध में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र का घोषणा-पत्र 'मानवता का पत्र' है। श्रीमती रूजवेल्ट ने इस घोषणा-पत्र को समस्त मानव जीवन समाज के **मैग्नाकार्टा** (Magnacarta) की संज्ञा प्रदान की।

प्र.9. मानवाधिकारों के विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

उत्तर विश्वभर में मानवाधिकारों के प्रति उठ रही माँगों तथा गरिमामय मानव जीवन की आकांक्षा ने मानव सभ्यता तथा संस्कृति को एक निर्णायक संवेदनशील रुख प्रदान कर दिया है। एक समय था जब मानव-अधिकारों की समस्या एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या नहीं थी। यह प्रत्येक राज्य के अन्य क्षेत्र के अधिकार का विषय था। सभी राज्य यह निर्धारित करने के लिए स्वतन्त्र थे कि उनके नागरिकों को अपनी संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार कौन-कौन-से नागरिक अधिकार प्राप्त होंगे। परन्तु मानव-कल्याण के लिए किये गये संघर्ष तथा मानव-अधिकारों के प्रश्न ने वर्तमान समय में विश्वव्यापी रूप धारण कर लिया है। इसीलिए संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में इनकी सुरक्षा के लिए कुछ उपबन्ध रखे हैं। इस चार्टर में मानवाधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की गई है। चार्टर की प्रस्तावना में, "मानव के मूल अधिकारों में मानव की गरिमा एवं महत्त्व में छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों के समान अधिकारों में आस्था' को दोहराया गया है। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना जिन उद्देश्यों के लिए की गई थी उनमें से एक उद्देश्य है

"जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के आधार पर बिना भेदभाव के समस्त लोगों के लिए मानव-अधिकारों व मूलभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को बढ़ावा देने व उन्नत करने में" अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना।

फ्रांसीसी विद्वान् तथा दार्शनिक **जीन जैक्स रूसो** ने लिखा था "मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है, पर हर जगह वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है।" रूसो ने इस विचार में शोषण तथा असमानता के बन्धनों में जकड़े हुए जनसाधारण की स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, आजादी व समानता का उच्चस्तर जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा व्यक्त की थी। वस्तुत: अधिकार सामाजिक जीवन की वे दशाएँ हैं, जिसके बिना कोई व्यक्ति अपने उच्चतम स्वरूप की प्राप्ति नहीं कर सकता।

मानवाधिकारों की यह व्यवस्था कोई नई व्यवस्था नहीं है। यह सदियों में हुए विकास का फल है। पहले व्यक्ति किसी तथ्य का अधिकार के समान दावा नहीं कर सकते थे किन्तु धीरे-धीरे व्यक्ति के अधिकारों की माँग को बल प्राप्त होता गया। व्यक्ति के अधिकारों की प्रथम घोषणा ब्रिटेन द्वारा सन् 1215 में की गई। इस घोषणा के अधिकार पत्र को मैग्नाकार्टा के नाम से भी जाना जाता है। यह अधिकार-पत्र मानवाधिकारों से सम्बन्धित प्रथम लिखित दस्तावेज है। इस दस्तावेज को मानवाधिकारों का जन्मदाता कहा जा सकता है। सन् 1215 के मैग्नाकार्टा के बाद ब्रिटेन में सन् 1676 में बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम पारित किया गया था। सन् 1689 में अधिकार पत्र (बिल ऑफ राइट्स) नामक दस्तावेज लिखा गया जिसमें जनता को दिये गये सभी महत्त्वपूर्ण अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं को समाविष्ट किया गया। सन् 1776 की अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषण और सन् 1789 की मानवाधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा में मानवाधिकारों को महत्त्व दिया गया। इस घोषणा में अधिकारों को प्राकृतिक अप्रतिदेय और मनुष्य के पवित्र अधिकारों के रूप में उल्लिखित किया गया है। अमेरिकी जनता ब्रिटिश संसद के अत्याचारों से परेशान थी, इसलिए उन्होंने जनता के मूल अधिकारों के लिए संवैधानिक सुरक्षा की माँग को जोर-शोर से उठाया। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1791में प्रथम दस संशोधनों द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों को संविधान का अंश बनाया गया।

तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सन् 1741 में अमेरिकी कांग्रेस को दिये गये सन्देश में भाषण तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, धर्म तथा विश्वास की स्वतन्त्रता, अभाव से स्वतन्त्रता, भय से स्वतन्त्रता आदि चार प्रमुख स्वतन्त्रताओं पर बल दिया था। बर्लिन कांग्रेस, ब्रुसेल्स सम्मेलन और दोनों हेग शान्ति सम्मेलनों में मानव के व्यक्तित्व को मान्यता देने के लिए महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये। इन्हीं उद्देश्यों हेतु 19वीं सदी में अफ्रीकी दासों के क्रय-विक्रयों की भर्त्सना की गई और पश्चिमी एशिया में अल्पसंख्यकों के नरसंहार के विरुद्ध पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा आवश्यक कार्यवाही भी की गई है। महात्मा गाँधी द्वारा चलाये गये दक्षिणी अफ्रीका की रंग-भेद नीति के विरुद्ध संघर्ष का आधार भी वस्तुत: मानव अधिकारों की रक्षा करना था। द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य नाजी जर्मनी द्वारा अल्पसंख्यकों और विजित प्रदेशों की जनता पर किये गये अमानुषिक अत्याचारों ने तो विश्व को इन संगठित अत्याचारों के विरुद्ध सुनियोजित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और विधान बनाने के लिए बाध्य कर दिया।

1 जनवरी, 1942 को हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्र की घोषणा में स्पष्ट किया गया कि सभी राज्यों में मानवीय अधिकारों का संरक्षण उन अनेक परिणामों में से एक था, जिनकी प्राप्ति की आशा धुरी राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् की गई थी।

सन् 1945 में मैक्सिको नगर में युद्ध व शान्ति की समस्याओं पर विचारार्थ सम्मेलन ने मनुष्यों के मूलभूत अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण की व्यवस्था के लिए अमेरिकी गणराज्यों का समर्थन घोषित किया गया। द्वितीय महायुद्ध के बाद 1945 में जब संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र तैयार करने के लिए 'सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन' आयोजित हुआ तो घोषणा पत्र तैयार करने वालों ने मानव अधिकारों तथा मूलभूत स्वतन्त्रताओं के सम्मान से सम्बन्धित प्रावधानों को उसमें सम्मिलित दिये जाने की आवश्यकता को अनुभव किया।

प्र.10. भारतीय संविधान एवं न्यायिक निर्णयों के सन्दर्भ में मानवाधिकार की विस्तृत विवेचना कीजिए।

उत्तर

संविधान एवं न्यायिक निर्णयों के सन्दर्भ में मानवाधिकार
(Human Rights in the Context of Constitution and Judicial Decisions)

हम संविधान एवं न्यायिक निर्णयों के सन्दर्भ में मानवाधिकार निम्न प्रकार समझ सकते हैं—

संविधान द्वारा प्रत्याभूत अधिकार (Guaranteed Rights given by Constitution)

संविधान के भाग 3 में मानवाधिकारों (मौलिक अधिकार) से सम्बन्धित अधिकार प्रमुखतया निम्नलिखित हैं—

समता का अधिकार (अनु० 14 से अनु० 18 तक) [(Right to Equality (Para 14 to 18)]

1. राज्य, भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।
2. राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

3. सार्वजनिक स्थलों के प्रयोग अथवा प्रवेश पर किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।
4. 'अस्पृश्यता' से उत्पन्न किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।
5. राज्य, सेना अथवा शिक्षा सम्बन्धी सम्मान के अतिरिक्त और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।

अनुच्छेद 14 से 18 तक में संविधान प्रत्येक व्यक्ति को समानता का अधिकार प्रदान करता है। वस्तुत: समानता के अधिकार में ही व्यक्ति की गरिमा निहित है। जब तक व्यक्ति-व्यक्ति के बीच समानता का भाव उत्पन्न नहीं होगा, तब तक व्यक्ति की गरिमा की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। बुराई की इस असमानता की जड़ को समाप्त करने के लिए ही संविधान में सर्वप्रथम समता के अधिकार को स्थान दिया गया है।

रामप्रसाद बनाम स्टेट ऑफ पंजाब तथा हवाला काण्ड में उच्चतम न्यायालय ने विधि के शासन को मान्यता प्रदान की है।

1. **समान कार्य के लिए समान वेतन**—रनधीर सिंह बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया के मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "यद्यपि समान कार्य के लिए समान वेतन मूल अधिकार नहीं है परन्तु यह एक संवैधानिक लक्ष्य अवश्य है। यदि इस सम्बन्ध में बिना किसी ठोस आधार के दो व्यक्तियों में विभेद किया जाता है तो इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है।" उत्तराखण्ड महिला कल्याण परिषद् बनाम स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश तथा बाबूलाल बनाम नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी के निर्णयों में उच्चतम न्यायालय ने समान कार्य के लिए समान वेतन के अधिकार का समर्थन किया है।
2. **पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था**—संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के व्यक्तियों को नियुक्तियों तथा विधि-निर्मात्री सभाओं में आरक्षण प्रदान किया गया है। समाज के पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करना एक महान कार्य रहा है। वस्तुत: सदियों से दासता का जीवन व्यतीत करने वाला यह वर्ग सत्ता से वंचित रहा है। संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधन में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए 33% स्थान आरक्षित किया जाना पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका को बढ़ाने की ओर एक अच्छा कदम है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि समता का मूल अधिकार मानवाधिकारों के लिए सुरक्षा कवच सिद्ध हुआ है।

स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से अनुच्छेद 22 तक)
[(Right to Freedom (Para 19 to 22)]

संविधान के अनुच्छेद 19 में नागरिकों को विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, शान्तिपूर्वक तथा निरायुध सभा अथवा सम्मेलन करने, संघ बनाने, भारत के राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध विचरण करने, भारत के किसी भी भाग में बसने अथवा निवास करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है।

मानवाधिकारों से सम्बद्ध यह एक अहम् मूल अधिकार है। विख्यात विधिवेत्ता **एन०ए० पालकीवाला** ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "स्वतन्त्रता मानव के हृदय में निवास करता है। व्यक्ति की मृत्यु से पूर्व उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। जब स्वतन्त्रता की मृत्यु हो जाती है, तब कोई भी संविधान, विधि अथवा न्यायालय न तो उसे बचा सकता है और न ही कोई सहायता प्रदान कर सकता है।"

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 19 में विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्रताओं का उल्लेख किया गया है परन्तु उच्चतम न्यायालय ने अपने विभिन्न फैसलों में मानवाधिकार से सम्बद्ध अनेक प्रकार के अधिकारों का उल्लेख किया है; जैसे—जीवन का अधिकार, नागरिकता का अधिकार, मताधिकार, चुनाव लड़ने का अधिकार, राज्य के साथ संविदा करने का अधिकार, सेवा में बने रहने का अधिकार, हड़ताल करने का अधिकार आदि।

1. **अपराधों के लिए दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण**—संविधान के अनुच्छेद 20 के द्वारा प्रत्याभूत दोषसिद्धि के विरुद्ध संरक्षण का भी अपना महत्त्व है—
   (i) कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक दोषी नहीं ठहराया जायेगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक अपराध सिद्धि का भाग नहीं होगा जो उस अपराध के लिए किये जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।
   (ii) किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित तथा दण्डित नहीं किया जायेगा।
   (iii) किसी अपराध के लिए अभियुक्त के रूप में आरोपित किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा।

2. **प्राण तथा दैहिक स्वतन्त्रता का संरक्षण**—अनुच्छेद 21 के अनुसार, "किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण अथवा दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं" अर्थात् कोई व्यक्ति अपने प्राण तथा शारीरिक स्वतन्त्रता से तभी वंचित किया जायेगा जबकि उसके लिए कोई विधिक उपबन्ध हो।
समय-समय पर न्यायालयों के समक्ष ऐसे अनेक वाद आये हैं जिनमें प्राण तथा दैहिक स्वतन्त्रता के मूल अधिकार में भी व्यापक व्यवस्था की गई। ऐसा कोई विषय शेष नहीं रहा जो मानव की गरिमा की रक्षा न करता हो। स्वास्थ्य की सुरक्षा, सामाजिक न्याय, फुटपाथ पर आजीविका कमाना, बँधुआ मजदूरों का पुनर्वास, नारी निकेतन का रख-रखाव, स्वच्छ पर्यावरण, स्वतन्त्र विचरण, नि:शुल्क विधिक सहायता आदि अनेक विषयों पर उच्चतम न्यायालय ने अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं।
3. **कुछ दशाओं में गिरफ्तारी तथा निरोध से संरक्षण**—अनुच्छेद 22 गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों के अधिकार और स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। इसमें निम्नलिखित संरक्षणों का उल्लेख किया गया है—
(i) गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी का कारण बताया जायेगा।
(ii) अपनी रुचि के विधि व्यवसायी (अधिवक्ता) से परामर्श करने का अधिकार दिया गया है।
(iii) गिरफ्तारी के बाद मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना ऐसे व्यक्ति को 24 घण्टों से अधिक निरुद्ध नहीं रखा जा सकेगा।

किसी भी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना 24 घण्टों से अधिक निरुद्ध न रखने की व्यवस्था प्रमुख रूप से पुलिस अधिकारियों की मनमानी को रोकने के लिए की गई है जिससे वे गिरफ्तारी के अधिकार का दुरुपयोग न कर सकें।

शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

भारत की अधिकांश अशिक्षित एवं निर्धन जनता अतीत से ही शोषण का शिकार रही है। सबल व्यक्तियों के द्वारा निर्बल एवं निर्धन वर्गों के व्यक्तियों का प्रारम्भ से ही शोषण किया जाता रहा है। नि:सन्देह यह व्यवस्था मानवीय मूल्यों के प्रतिकूल रही है। निवारण के लिए संविधान में शोषण के विरुद्ध अधिकार को सम्मिलित किया गया है। अनुच्छेद 23 व 24 इसी से सम्बन्धित हैं।

1. मानव का दुर्व्यापार, बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है तथा इस उपबन्ध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।
2. चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने अथवा खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जायेगा या अन्य किसी परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जायेगा।

इस प्रकार से इन अनुच्छेदों के द्वारा महिलाओं तथा बच्चों का अनैतिक व्यापार, दास प्रथा, बेगार व बलात् श्रम सभी अब निषिद्ध कर दिये गये हैं।

न्यायिक निर्णय (Judicial Decision)

उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों के द्वारा ऐसे अनेक निर्णय अभिनिर्णीत किये गये हैं जिनमें मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए उचित कदम उठाये गये हैं। इस प्रकार संविधान के भाग 3 में वर्णित मूल अधिकार मूलत: मानवाधिकारों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। सच तो यह है कि वर्तमान समय में मूल अधिकारों व मानवाधिकारों का क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत एवं व्यापक हो गया है कि दोनों एक-दूसरे के पर्याय एवं पूरक समझे जाने लगे हैं।

मानवाधिकार बनाम नीति-निदेशक तत्त्व (Human Rights *vs* Directive Principles)

भारतीय संविधान में भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 तक नीति-निदेशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है। धारणा यद्यपि यही रही है कि नीति-निदेशक तत्त्व मूल अधिकारों की भाँति प्रवर्तनीय नहीं हैं, परन्तु व्यवहार में अब यह धारणा परिवर्तित होने लगी है। वर्तमान में राज्य के नीति-निदेशक तत्त्वों को भी मूल अधिकारों जैसा महत्त्व दिया जाने लगा है। वस्तुत: राज्य को कल्याणकारी स्वरूप प्रदान करने वाले तो ये ही तत्त्व हैं। ये ही वे तत्त्व हैं जो सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा, समाज कल्याण एवं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व मैत्री को सुनिश्चित करते हैं। मानवाधिकारों का वास्तविक स्वरूप भी इन्हीं नीति-निदेशक तत्त्वों में ही दिखाई देता है। विगत दिनों में ऐसे अनेक न्यायिक निर्णय भी हुए हैं जिनमें नीति-निदेशक तत्त्वों को मूल अधिकारों की भाँति लागू करने की व्यवस्था की गई है—

1. उन्नीकृष्ण बनाम स्टेट ऑफ आन्ध्र प्रदेश के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को नि:शुल्क शिक्षा दिये जाने की व्यवस्था करना राज्य का कर्त्तव्य है।

2. पी० चेकिया बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया के मामले में भी शिक्षा के अधिकार का प्राण तथा दैहिक स्वतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में देखे जाने की बात कही गई है।
3. बाबू लाल बनाम नई दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी के मामले में समान कार्य के लिए समान वेतन के अधिकार की पुष्टि की गई है।
4. स्टेट ऑफ महाराष्ट्र बनाम रविकान्त एस० पाटिल के मामले में अनावश्यक हथकड़ी लगाने, दिल्ली न्यायिक सेवा संघ बनाम स्टेट ऑफ गुजरात के मामले में पुलिस के दुर्व्यवहार तथा लीगल ऐड कमेटी बनाम स्टेट ऑफ बिहार के मामले में पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु को मानवाधिकार के अतिक्रमण का स्पष्ट मुद्दा माना गया है।

हाल ही में संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्तर दिया जाना, सत्ता में महिलाओं तथा अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित किया जाना एवं उनकी भूमिका में वृद्धि करना नि:सन्देह मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

मानवाधिकार बनाम मूल कर्त्तव्य
(Human Rights *vs* Fundamental Duties)

भारत के संविधान में आरम्भ में नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख नहीं था। संविधान में मूल कर्त्तव्यों का समावेश संविधान के 42वें संशोधन द्वारा किया गया है। इन कर्त्तव्यों को संविधान में स्थान देने के पीछे मूल भावना यही रही है कि नागरिक देश एवं संविधान के आदर्शों को अक्षुण्ण बनाये रखें क्योंकि अधिकार एवं कर्त्तव्य एक-दूसरे के अन्योन्याश्रित होते हैं। इस प्रकार मूल कर्त्तव्य मानवाधिकारों के पोषक हैं। ये वे मूल कर्त्तव्य ही हैं जिन्होंने महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध प्रथाओं के त्यागने का आह्वान किया है। सती प्रथा का निवारण इसका प्रमुख उदाहरण है।

एम०सी० मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि केन्द्र सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह देश की शिक्षण संस्थाओं को सप्ताह में एक घण्टे पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा देने का निर्देश दे।

अभी कुछ समय पूर्व उच्चतम न्यायालय ने 'इण्डियन काउन्सिल फॉर एन्वायरी लीगल एक्शन' नामक स्वैच्छिक संगठन द्वारा प्रस्तुत जनहित याचिका में राजस्थान के पाँच रासायनिक कारखानों को बन्द करने का आदेश जारी किया है। इन कारखानों से न केवल वायु एवं जल ही प्रदूषित हो रहा था अपितु ग्रामवासियों की कृषि भूमि भी दूषित हो रही है।

मानवाधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार
(Human Rights and Right to Constitutional Remedies)

मूल अधिकारों एवं मानवाधिकारों का संवैधानिक उपचारों के अधिकार से सीधा सम्बन्ध है। भारतीय संविधान जहाँ अपने नागरिकों को विशद् रूप में मूल अधिकार प्रदान करता है वही उसे प्रवर्तित कराने के लिए 'संवैधानिक उपचारों का अधिकार' भी प्रदान करता है।

संवैधानिक उपचारों के अधिकार को उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 32 एवं अनुच्छेद 226 में किया गया है। इन दोनों अनुच्छेदों के अन्तर्गत क्रमश: उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय मूल अधिकारों एवं मानवाधिकारों को रिट के माध्यम से लागू करते हैं। दोनों में अन्तर केवल यही है कि अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय द्वारा केवल मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए रिट जारी की जा सकती है जबकि अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय अन्य किसी प्रयोजन के लिए भी रिट जारी कर सकते हैं। इस प्रकार रिट के सम्बन्ध में उच्च न्यायालयों की अधिकारिता उच्चतम न्यायालय से व्यापक है। उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों द्वारा जारी की जाने वाली रिटें पाँच प्रकार की हैं—

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), 2. परमादेश (Mandamus), 3. प्रतिषेध (Prohibition), 4. उत्प्रेषण (Certiorari), 5. अधिकार पृच्छा (Quo warranto)।

❑

UNIT-IV

सरकारी नीतियाँ, अभियान एवं लोकपाल
Government Policies, Campaigns and Lokpal

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सूचना के अधिकार से क्या तात्पर्य है?

उत्तर सूचना के अधिकार से तात्पर्य है कि सरकारी काम-काज के विषय में देश की जनता को जानने का अधिकार है। यह सरकार की गोपनीयता के विपरीत खुलापन सुनिश्चित करने का अधिकार है।
लोकतान्त्रिक समाजों में प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपनी सरकार से सार्वजनिक मुद्दों से सम्बन्धित लोक महत्त्व की बातों को जान सके। विश्व में अनेक राष्ट्रों ने यह अधिकार नागरिकों को प्रदान किया है।

प्र.2. सूचना का अधिकार अधिनियम किस वर्ष प्रारम्भ हुआ?

उत्तर सूचना का अधिकार अधिनियम सन् 2005 में प्रारम्भ हुआ।

प्र.3. किस राज्य ने सर्वप्रथम सूचना का अधिकार अधिनियम बनाया था?

उत्तर तमिलनाडु राज्य ने सर्वप्रथम सूचना का अधिकार अधिनियम बनाया था।

प्र.4. लोकपाल एवं लोकायुक्त का अभिप्राय बताइए।

उत्तर स्केन्डीनेवियन संस्था ओम्बुड्समैन नागरिकों की शिकायतों को दूर करने की प्राचीन लोकतान्त्रिक संस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रशासन तन्त्र में जनता के विश्वास को बढ़ाना है। भारत में ओम्बुड्समैन लोकपाल और लोकायुक्त संस्थाओं के नाम से जाना जाता है। लोकपाल को केन्द्र व राज्य सरकार के मन्त्रियों एवं सचिवों के प्रशासनिक कार्यों के विरुद्ध शिकायतों को देखने का और लोकायुक्तों को राज्य एवं केन्द्र के सचिव स्तर से नीचे के अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों के विरुद्ध शिकायतों को देखने का दायित्व सौंपा गया है।

प्र.5. लोक आयुक्त के मुख्य कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर राज्य प्रशासन में भ्रष्टाचार एवं भाई-भतीजावाद की जाँच करना। कुछ राज्यों में यह मुख्यमन्त्री सहित सभी मन्त्रियों के विरुद्ध आरोपों की जाँच करता है।

प्र.6. लोक आयुक्त की शक्तियों एवं कार्यों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर राज्य के मन्त्रियों, सचिवों और उच्च स्तर के अधिकारियों के विरुद्ध पद के दुरुपयोग व भ्रष्टाचार की शिकायतों की जाँच के उद्देश्य से लोकायुक्त की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है राज्यों के लोकायुक्त के कानून व अधिकार अलग-अलग हैं। लोकायुक्त स्वत: अपनी पहल शक्ति के आधार पर भी मामलों की जाँच कर सकता है उसे शिकायतों की जाँच पड़ताल के सम्बन्ध में सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियाँ प्राप्त हैं।

प्र.7. लोकपाल का गठन सर्वप्रथम किस देश में हुआ था?

उत्तर सर्वप्रथम स्वीडन में सन् 1809 में लोकपाल का गठन हुआ था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सूचना के अधिकार की क्या आवश्यकता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

सूचना के अधिकार की आवश्यकता एवं महत्त्व
(Need and Importance of Right to Information)

सूचना का अधिकार एक प्रजातान्त्रिक अधिकार है और लोकतन्त्र को वास्तविक बनाने तथा अनेक कारणों से यह जरूरी हो जाता है।

1. यह जनता को मौलिक अधिकार है कि वह सार्वजनिक मामलों की जानकारी ले।
2. यह प्रजातन्त्र को वास्तविक बनाता है।
3. यह प्रशासन को जनता के निकट लाता है, उसके प्रति उत्तरदायी बनाता है और इस प्रकार प्रजातन्त्र की भावना के अनुरूप है।
4. प्रशासनिक निर्णयों में जन-सहभागिता बढ़ती है, जिससे प्रशासन का भी प्रजातन्त्रीकरण होता है।
5. प्रशासनिक निर्णयों में जन प्रशासन की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाती है।
6. इससे प्रशासनिक निरंकुशता पर लगाम और वह जनता के प्रति अधिक बनता।
7. प्रशासन में सतर्कता और सच्चरित्रता बढ़ती है।
8. इससे अधिकारों और भ्रष्टाचार के अवसर घटते हैं जबकि पारदर्शिता के अवसर बढ़ते हैं।
9. सूचना का अधिकार प्रशासन-राजनीति गठबन्धन बेनकाब कर उनको उन्मूलित करने में कर सकता है।
10. यह राजनीति-प्रशासन को जनता के कर्त्तव्य परायण और संवेदनशील बनाता है।

प्र.2. केन्द्र और राज्य सूचना आयोग के गठन को समझाइए।

उत्तर भारत के सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के अध्याय-3 की धारा-12 के अन्तर्गत 'केन्द्रीय सूचना आयोग' के गठन का प्रावधान किया गया है। केन्द्रीय सूचना आयोग का गठन केन्द्र-सरकार द्वारा राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से किया गया है। इसमें एक मुख्य सूचना आयुक्त के साथ सूचना आयुक्त होंगे, जो संख्या में दस से अधिक नहीं होंगे। उनकी नियुक्ति ऐसी समिति की सिफारिश पर भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी, जिसमें प्रधानमन्त्री, लोकसभा के विपक्ष का नेता और प्रधानमन्त्री द्वारा नामित केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का एक मन्त्री होगा। प्रथम अनुसूची में निर्धारित फार्म के अनुसार राष्ट्रपति मुख्य सूचना आयुक्त तथा सूचना आयुक्त को पद की शपथ दिलाते हैं।

भारत के प्रथम केन्द्रीय सूचना आयुक्त के रूप में अक्टूबर 2005 में 'वजाहत हबीबुल्ला' की नियुक्ति की गई थी। आयोग का अपना मुख्यालय दिल्ली में होगा। अन्य कार्यालय केन्द्र सरकार की स्वीकृति से देश के अन्य भागों में स्थापित किये जा सकते हैं।

इसी प्रकार, राज्य सरकार भी राजपत्र अधिसूचना से राज्य सूचना आयोग का गठन करेगी। आयोग में एक राज्य मुख्य सूचना आयुक्त के साथ राज्य सूचना आयुक्त होंगे, जिनकी संख्या दस से अधिक नहीं होगी। इनकी नियुक्ति मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में नियुक्ति समिति (appointments committee) की सिफारिश पर राज्यपाल द्वारा की जायेगी। समिति के अन्य सदस्यों में विधानसभा में विपक्ष का नेता और मुख्यमन्त्री द्वारा नामित मन्त्रिमण्डल का एक मन्त्री शामिल होगा। प्रथम अनुसूची में निर्धारित फार्म के अनुसार राज्यपाल पद की शपथ दिलाता है। राज्य सूचना आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर होगा, जिसे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जायेगा। अन्य कार्यालय राज्य के अन्य भागों में राज्य सरकार की स्वीकृति से स्थापित किये जा सकते हैं।

प्र.3. लोक सूचना अधिकारी के प्रमुख कार्य लिखिए।

उत्तर

लोक सूचना अधिकारी के कार्य
(Functions of Public Information Officer)

लोक सूचना अधिकारी के कार्य अथवा कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं—

1. लोक सूचना अधिकारी का कार्य लोगों के आवेदन-पत्रों अथवा अपीलों को विधिवत् प्राप्त सम्बन्धित स्थान तक पहुँचना है। लोक सूचना अधिकारी सूचना माँगने वाले व्यक्तियों से प्राप्त आवेदनों का निपटारा करता है और जहाँ आवेदन लिखित रूप में नहीं दिया गया हो तो लिखित रूप में उसे करने के लिए व्यक्ति की सहायता करता है।
2. लोक सूचना अधिकारी अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए किसी अन्य अधिकारी से सहायता ले सकता है।
3. यदि आवेदित सूचना किसी अन्य लोक प्राधिकारी के पास है या किसी अन्य लोक प्राधिकारी के कार्य से सम्बद्ध मामला या विषय है तो लोक सूचना अधिकारी पाँच दिन के भीतर अनुरोध को उस अधिकारी के पास भेज देगा और तत्काल आवेदक को सूचित करेगा।
4. लोक सूचना अधिकारी अनुरोध प्राप्ति पर यथासम्भव शीघ्रातीशीघ्र और (किसी भी स्थिति में) अनुरोध की प्राप्ति के 30 दिन के भीतर यथा निर्धारित शुल्क के भुगतान पर या तो सूचना देगा या S.8 या S.9 में विनिर्दिष्ट कारणों के आधार पर अस्वीकार करेगा। यदि आवेदित सूचना व्यक्ति के जीवन या स्वतन्त्रता से सम्बन्धित हो तो अनुरोध प्राप्ति के 48 घण्टों के भीतर सूचना दी जायेगी।

5. यदि लोक सूचना अधिकारी अनुरोध पर विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर निर्णय देने में विफल होता है तो सम्बद्ध अनुरोध अस्वीकार कर लिया माना जायेगा।
6. जहाँ अनुरोध अस्वीकृत किया गया है, लोक सूचना अधिकारी अनुरोधकर्त्ता को सूचित करेगा—(i) ऐसी अस्वीकृति का कारण; (ii) कितनी अवधि के अन्तर्गत ऐसी अस्वीकृति के विरुद्ध अपील को वरीयता दी जा सकती है और (iii) अपीलीय प्राधिकरण का ब्यौरा।

प्र.4. लोकपाल एवं लोकायुक्त (संशोधन) विधेयक 2016 क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 को संशोधित करने के लिये लोकपाल एवं लोकायुक्त (संशोधन) विधेयक, 2016 संसद ने जुलाई, 2016 में पारित किया। इसके द्वारा यह निर्धारित किया गया कि विपक्ष के मान्यता प्राप्त नेता के अभाव में लोकसभा में सबसे बड़े एकल विरोधी दल का नेता चयन समिति का सदस्य होगा। इसके द्वारा वर्ष 2013 के अधिनियम की धारा 44 में भी संशोधन किया गया जिसमें प्रावधान है कि सरकारी सेवा में आने के 30 दिनों के भीतर लोकसेवक को अपनी सम्पत्तियों और दायित्वों का विवरण प्रस्तुत करना होगा। संशोधन विधेय के द्वारा 30 दिन की समय-सीमा समाप्त कर दी गई, अब लोकसेवक अपनी सम्पत्तियों और दायित्वों की घोषणा सरकार द्वारा निर्धारित रूप में एवं तरीके से करेंगे। यह ट्रस्टियों और बोर्ड के सदस्यों को भी अपनी तथा पति/पत्नी की परिसम्पत्तियों की घोषणा करने के लिये दिये गये समय में भी बढ़ोतरी करता है, उन मामलों में जहाँ वे एक करोड़ रुपये से अधिक सरकारी या 10 लाख रुपये से अधिक विदेशी धन प्राप्त करते हों।

प्र.5. लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 क्या है?

उत्तर लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 अधिनियम के प्रारम्भ होने की तिथि से 365 दिनों की निर्दिष्ट अवधि के भीतर राज्य विधान मण्डल द्वारा एक कानून बनाने के माध्यम से लोकायुक्त संस्था की स्थापना के लिए एक जनादेश है। इस सम्बन्ध में, अधिनियम के अन्तर्गत सभी राज्यों को अपनी सुविधा अनुसार लोकायुक्त तन्त्र के नियमों पर निर्णय लेने की स्वतन्त्रता दी गई।

यहाँ तक कि इस अधिनियम के आने के पूर्व ही कई राज्यों ने लोकायुक्त का गठन कर लिया था।

प्र.6. हमें लोकपाल जैसी संस्थाओं की क्या आवश्यकता है?

उत्तर खराब प्रशासन दीमक की तरह है जो धीरे-धीरे किसी राष्ट्र की नींव को खोखला करता है तथा प्रशासन को अपने कार्य पूर्ण करने में बाधा डालता है। भ्रष्टाचार इस समस्या की जड़ है। अधिकतर भ्रष्टाचार निरोधी संस्थाएँ पूर्णत: स्वतन्त्र नहीं हैं। यहाँ तक कि सर्वोच्च न्यायालय ने भी CBI को 'पिंजरे का तोता' और 'अपने मालिक की आवाज' बताया है। इनमें से कई एजेन्सियाँ नाममात्र शक्तियों वाले केवल परामर्शी निकाय हैं और उनकी सलाह का शायद ही अनुसरण किया जाता है। इसके अलावा आन्तरिक पारदर्शिता और जवाबदेही की भी समस्या है, क्योंकि इन एजेन्सियों पर नजर रखने के लिए अलग से कोई प्रभावी व्यवस्था नहीं है। इस सन्दर्भ में, एक स्वतन्त्र लोकपाल संस्था भारतीय राजनीति के इतिहास में मील का पत्थर कहा जा सकता है, जिसने कभी समाप्त न होने वाले भ्रष्टाचार के खतरे का एक समाधान प्रस्तुत किया है।

प्र.7. लोकायुक्त की शक्तियाँ एवं कार्य लिखिए।

उत्तर लोकायुक्त की शक्तियाँ—लोकायुक्त के पास निम्नलिखित शक्तियाँ हैं—

1. पर्यवेक्षी शक्तियाँ, अर्थात् अधीक्षण की शक्तियाँ और प्रारम्भिक जाँच या जाँच के लिए सन्दर्भित मामलों के बारे में दिशा-निर्देश देने के लिए।
2. कुछ मामलों में सिविल कोर्ट की शक्ति।
3. खोज और गिरफ्त की शक्ति।
4. सम्पत्ति कुर्की की पुष्टि के बारे में शक्ति।
5. राज्य सरकार के अधिकारियों की सेवाओं का उपयोग करने की शक्ति।
6. भ्रष्टाचार के आरोप से जुड़े लोक सेवक के स्थानान्तरण या निलम्बन की सिफारिश करने की शक्ति।
7. विशेष परिस्थितियों में, भ्रष्टाचार के माध्यम से उत्पन्न या प्राप्त की गई आय, प्राप्तियों और लाभों को जब्त करने से सम्बन्धित शक्तियाँ।
8. प्रारम्भिक जाँच के दौरान, रिकॉर्ड को नष्ट करने से रोकने के लिए निर्देश देने की शक्ति।
9. प्रत्यायोजित करने की शक्ति। इस सन्दर्भ में लोकायुक्त यह निर्देश भी दे सकता है कि उसे दी गई कोई भी प्रशासनिक या वित्तीय शक्ति का उसके अधिकारी द्वारा प्रयोग या निर्वहन भी किया जा सकता है।

लोकायुक्त के कार्य—उपर्युक्त शक्तियों के आधार पर लोकायुक्त लोक प्रशासन के मानकों में सुधार के लिए निम्नलिखित कार्य करता है—

1. लोकायुक्त किसी भी नागरिक से प्रशासन के विरुद्ध शिकायत स्वीकार कर सकता है।
2. आरोपी व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध शिकायत को स्वीकार करते हुए, लोकायुक्त शिकायतकर्त्ता को उसके बारे में सूचित करने के बाद, बचाव के लिए अवसर देता है।
3. लोकायुक्त विशेष जाँच एजेन्सियों की सहायता लेकर आरोपी के विरुद्ध, तथ्यों के आधार पर निष्पक्ष जाँच करता है।
4. यदि लोकायुक्त शिकायत की वैधता से सन्तुष्ट है तो वह सक्षम प्राधिकारी को लिखित अनुरोध के माध्यम से अपने प्रस्ताव की सिफारिश कर सकता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सूचना के अधिकार की क्या आवश्यकता है? विवेचना कीजिए।

उत्तर

सूचना के अधिकार की आवश्यकता
(Need for Right to Information)

देश के प्रत्येक नागरिक को यह जानने का अधिकार है कि सरकार किस प्रकार कार्य कर रही है। सूचना का अधिकार प्रत्येक नागरिक को सरकार से कोई भी सूचना प्राप्त करने, किसी भी सरकारी प्रलेख का निरीक्षण करने और उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त करने का अधिकार देता है। सूचना के अधिकार के कुछ कानून किसी भी सरकारी कार्य का निरीक्षण करने या सामग्री के नमूने लेने का भी अधिकार देते हैं। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सरकारें लोगों द्वारा, लोगों की और लोगों के लिए होती हैं। लोगों से प्राप्त किये गये कर सरकार का कामकाज चलाने के लिए उपयोग किये जाते हैं। इसलिए, लोगों को यह जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है कि सार्वजनिक धन किस प्रकार प्रयुक्त किया जा रहा है।

हाल ही के वर्षों में, अनुक्रियाशील और जवाबदेही प्रशासन के सन्दर्भ में सरकार के कार्यकरण में पारदर्शिता (transparency) के विषय में चिन्ताओं में वृद्धि हुई है। पारदर्शिता का तात्पर्य है कि निर्णय निष्पक्षता और समानता के सिद्धान्तों पर आधारित घोषित मानदण्डों और कसौटियों के आधार पर लिये जाते हैं। यह उल्लेखित किया गया है कि नियमित (routine) सूचना भी उतनी उपलब्ध नहीं होती है, जितनी कुछ वर्ष पहले आसानी से होती थी और जाँच तथा अध्ययन रिपोर्ट, जिन्हें तैयार करने में बहुत बड़ी धनराशि खर्च की जाती है, यदाकदा ही सार्वजनिक सूचना के लिए प्रकाशित किये जाते हैं। नागरिक के पास यह जानने का कोई साधन नहीं होता है कि सरकारी निर्णय किस प्रकार लिये जाते हैं।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की प्रस्तावना बहुत स्पष्ट रूप से सूचना के अधिनियम के लिए कानून होने की आवश्यकता को संक्षेप में उल्लेख करती है।

"जबकि भारत के संविधान ने लोकतान्त्रिक गणतन्त्र की स्थापना की;

और जबकि लोकतन्त्र को सुविज्ञ नागरिक (informed citizenry) और सूचना की पारदर्शिता की आवश्यकता होती है, जो इसके कार्यकरण के लिए और भ्रष्टाचार रोकने के लिए तथा सरकारों और उनके अभिकरणों को शासितों के प्रति उत्तरदायी ठहराने के लिए अनिवार्य है;

और जबकि वास्तविक व्यवहार में सूचना के प्रकटन का सरकारों के दक्ष प्रचालन, सीमित वित्तीय संसाधनों के इष्टतम प्रयोग और संवेदनशील सूचना की गोपनीयता के संरक्षण सहित अन्य सार्वजनिक हितों से टकराव हो सकता है;

और जबकि लोकतान्त्रिक आदर्श की श्रेष्ठता सुरक्षित रखते हुए इन परस्पर विरोधी हितों को संगत करना आवश्यक है;

अब, इसलिए, उन नागरिकों को कतिपय सूचना देने के लिए प्रावधान करना उचित है, जो इसे प्राप्त करना चाहते हैं।

इसलिए, निम्नलिखित कारणों से वास्तविक लोकतान्त्रिक राज्य के नागरिकों के लिए सूचना का अधिकार आवश्यक है—

1. **भ्रष्टाचार का सामना करना**—भ्रष्टाचार आज वर्तमान समय में देश को दीमक की तरह खोखला कर रहा है। यह सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है, जिसे सूचना का अधिकार प्रभावित करता है। एक बार जब सरकार के कार्यकरण सार्वजनिक संवीक्षा के लिए खुल जाते हैं, सरकारी कर्मचारियों के लिए भ्रष्ट प्रथाओं से बचकर निकलना मुश्किल होता है।
2. **नागरिकों को सुविचारित निर्णय करने में सक्षम बनाना**—सरकारी अभिकरणों के कार्यकरण और निर्वाचित प्रतिनिधियों के कार्यनिष्पादन के बारे में जानने की क्षमता लोगों को सुविचारित विकल्प तक पहुँचने में सहायता करती है। सुविज्ञ नागरिक अपना मत जाति या गुटबन्दी के संकीर्ण विचारों के बदले कार्यनिष्पादन के आधार पर कर सकते हैं।

3. **नागरिक और सरकार के बीच दोतरफा संवाद स्थापित करना**—खुलापन और सूचना का सहभाजन नागरिकों और राज्य के बीच दोतरफा संवाद स्थापित करता है, सरकार और लोगों को एक-दूसरे के निकट लाता है और इससे विमुखता की भावना का सामना किया जा सकता है। इससे लोग निर्णय प्रक्रिया का भाग हो सकते हैं। यह नागरिकों की शक्तिहीनता की भावना को कम करता है।
4. **ऐसी पारदर्शी सरकार सुनिश्चित करना, जो लोगों के प्रति उत्तरदायी हो**—सूचना का अधिकार सुनिश्चित करता है कि लोगों को सरकार के कार्यकरण के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो, जिसके परिणामस्वरूप निर्णय करने में पारदर्शिता, एकरूपता और उत्तरदायित्व उत्पन्न होता है। यह सरकार को सभी नागरिकों के लिए एक समान नियमों और क्रियाविधियाँ अपनाने के लिए अभिप्रेरित करती हैं।
5. **सरकार द्वारा दी गई सेवाओं की बेहतर निगरानी सुनिश्चित करना**—भारत में सूचना के अधिकार के अभियान ने इस पहलू पर बहुत ध्यान केन्द्रित किया है और बहुत-से लोगों ने उचित दर की दुकानों (ration shops) के कोटे और उसके वितरण के बारे में सूचना लेने, नामावली में प्रविष्ट नकली नामों की संवीक्षा करने और विकास कार्यों के निष्पादन में कमियों का उल्लेख करने में सूचना के अधिकार का प्रयोग किया है। इस प्रकार सूचना का अधिकार सरकारी सेवाओं की बेहतर निगरानी सुनिश्चित करने के लिए होता है।

कोई भी अधिकार सम्पूर्ण होता है, इसलिए उन मापदण्डों को परिभाषित करना भी आवश्यक है, जिनके अन्तर्गत नागरिक, राष्ट्र की सुरक्षा को जोखिम में डाले बिना और अन्य व्यक्तियों की गोपनीयता का उल्लंघन किये बिना, सूचना के अधिकार का प्रयोग कर सकें। इसलिए उन सरकारी कार्मिकों के उत्तरदायित्वों को स्पष्ट करना भी महत्त्वपूर्ण है जिन्हें वास्तव में सूचना देनी है, जिससे नागरिकों को अनावश्यक परेशानी का सामना न करना पड़े। सूचना के अधिकार पर कानून प्रणालीबद्ध तरीके से इन सभी पहलुओं को निर्धारित करता है और इसके लिए मशीनरी का प्रावधान भी करता है। यदि नागरिक सरकारी कार्यालय में जाता है और अधिकारी को अपनी सभी फाइलें दिखाने की माँग करता है, क्योंकि यह उसका मौलिक अधिकार है, अधिकांशत: अधिकारी इस माँग को अस्वीकार करते हैं, जब तक कि ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं होता है, जो उसे ऐसा करने के लिए बाध्य करता हो। इस प्रकार सूचना का अधिकार कानून में उन फार्मों की व्यवस्था की गई है, जिनमें आवेदन किया जा सकता है और साथ ही यह भी उल्लेख किया गया है कि कहाँ आवेदन किया जा सकता है, कितने दिनों में सूचना प्राप्त होनी चाहिए तथा यदि निर्धारित समय सीमा में सूचना नहीं दी जाती है तो नागरिक सूचना प्राप्त करने के लिए क्या कर सकता है?

प्र.2. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 से आपका क्या तात्पर्य है? इसके प्रमुख प्रावधानों एवं अन्य देशों के कानूनों के साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005
(Right to Information Act, 2005)

सूचना का अधिकार अधिनियम 15 जून, 2005 को अधिनियमित किया गया और पूर्णतया 12 अक्टूबर, 2005 को सम्पूर्ण धाराओं के साथ लागू कर दिया गया। सूचना का अधिकार अर्थात राइट टू इन्फॉरमेशन का तात्पर्य है, सूचना पाने का अधिकार, जो सूचना अधिकार कानून लागू करने वाला राष्ट्र अपने नागरिकों को प्रदान करता है। सूचना अधिकार के द्वारा राष्ट्र अपने नागरिकों को, अपने कार्य को और शासन प्रणाली को सार्वजनिक करता है।

लोकतन्त्र में देश की जनता अपनी चुनी हुए सरकार को शासन करने का अवसर प्रदान करती है और यह अपेक्षा करती है कि सरकार पूरी ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का पालन करेगी। लेकिन कालान्तर में अधिकांश राष्ट्रों ने अपने दायित्वों का गला घोंटते हुए पारदर्शिता और ईमानदारी की बोटियाँ नोंचने में कोई कसर नहीं छोड़ी और भ्रष्टाचार के बड़े-बड़े कीर्तिमान कायम करने का एक भी मौका अपने हाथ से गँवाना नहीं भूले। भ्रष्टाचार के इन कीर्तिमानों को स्थापित करने के लिए हर वो कार्य किया जो जनविरोधी और अलोकतान्त्रिक हैं। सरकार यह भूल जाती है कि जनता ने उन्हें चुना है और जनता ही देश की असली मालिक है एवं सरकार उनकी चुने हुई सेवक, इसलिए मालिक होने के नाते जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है, कि जो सरकार उनकी सेवा में है, वह क्या कर रही है?

प्रत्येक नागरिक सरकार को किसी-न-किसी रूप में कर देता है। यहाँ तक एक सुई से लेकर एक माचिस तक का टैक्स अदा करता है। इसी प्रकार देश का प्रत्येक नागरिक कर अदा करता है और यही कर देश के विकास और व्यवस्था की आधारशिला को निरन्तर स्थिर रखता है। इसलिए जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है कि उसके द्वारा दिया गया पैसा कब, कहाँ और किस प्रकार खर्च किया जा रहा है? इसके लिए यह जरूरी है कि सूचना को जनता के समक्ष रखने एवं जनता को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया जाए, जो एक कानून द्वारा ही सम्भव है।

सन् 1947 में भारत को स्वतन्त्रता मिलने के बाद 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू हुआ, लेकिन संविधान निर्माताओं ने इसका कोई भी वर्णन नहीं किया और न ही अंग्रेजों का बनाया हुआ शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 का संशोधन किया। आने वाली सरकारें गोपनीयता अधिनियम 1923 की धारा 5 व 6 के प्रावधानों का लाभ उठाकर जनता से सूचनाओं को छुपाती रही।

सूचना के अधिकार के प्रति कुछ जागरूकता वर्ष 1975 में शुरुआत में 'उत्तर प्रदेश सरकार बनाम राज नारायण'' से हुई।

मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय में हुई, जिसमें न्यायालय ने अपने आदेश में लोक प्राधिकारियों द्वारा सार्वजनिक कार्यों का ब्यौरा जनता को प्रदान करने की व्यवस्था की। इस निर्णय ने नागरिकों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का दायरा बढ़ाकर सूचना के अधिकार को शामिल कर दिया।

वर्ष 1982 में द्वितीय प्रेस आयोग ने शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 की विवादास्पद धारा 5 को निरस्त करने की सिफारिश की थी, क्योंकि इसे कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया था कि 'गुप्त' क्या है और 'शासकीय गुप्त बात' क्या है? इसलिए परिभाषा के अभाव में यह सरकार के निर्णय पर निर्भर था, कि कौन-सी बात को गोपनीय माना जाये और किस बात को सार्वजनिक किया जाये। वर्ष 2006 में 'विरप्पा मोइली' की अध्यक्षता में गठित 'द्वितीय प्रशासनिक आयोग' ने इस कानून को निरस्त करने की सिफारिश की।

सूचना के अधिकार की माँग राजस्थान से प्रारम्भ हुई। राज्य में सूचना के अधिकार के लिए 1990 के दशक में जनान्दोलन की शुरुआत हुई, जिसमें मजदूर किसान शक्ति संगठन (एम०के०एस०एस०) द्वारा अरुणा राय की अगुवाई में भ्रष्टाचार के भंडाफोड़ के लिए जनसुनवाई कार्यक्रम के रूप में हुई।

1989 में कांग्रेस की सरकार गिरने के बाद वी०पी० सिंह की सरकार सत्ता में आई, जिसने सूचना का अधिकार कानून बनाने का वायदा किया। 3 दिसम्बर, 1989 को अपने पहले संदेश में तत्कालीन प्रधानमन्त्री वी०पी० सिंह ने संविधान में संशोधन करके सूचना का अधिकार बनाने तथा शासकीय गोपनीयता अधिनियम में संशोधन करने की घोषणा की। किन्तु वी०पी० सिंह की सरकार तमाम कोशिशें करने के बावजूद भी इसे लागू नहीं कर सकी और यह सरकार भी ज्यादा दिन तक न टिक सकी।

वर्ष 1997 में केन्द्र सरकार ने एच०डी० शौरी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित करके मई, 1997 में सूचना की स्वतन्त्रता का प्रारूप प्रस्तुत किया, किन्तु शौरी कमेटी के इस प्रारूप को संयुक्त मोर्चे की दो सरकारों ने दबाये रखा।

वर्ष 2002 में संसद ने सूचना की स्वतन्त्रता विधेयक पारित किया। इसे जनवरी 2003 में राष्ट्रपति की मंजूरी मिली, लेकिन इसकी नियमावली बनाने के नाम पर इसे लागू नहीं किया गया।

संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (यू०पी०ए०) की सरकार ने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में किये गये अपने वायदे के अनुसार पारदर्शिता युक्त शासन व्यवस्था एवं भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाने के लिए 12 मई, 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 संसद में पारित किया, जिसे 15 जून, 2005 को राष्ट्रपति की अनुमति मिली और अन्ततः 12 अक्टूबर, 2005 को यह कानून जम्मू-कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में लागू किया गया। इसी के साथ सूचना की स्वतन्त्रता विधेयक 2002 को निरस्त कर दिया गया।

इस कानून के राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने से पूर्व नौ राज्यों ने पहले से लागू कर रखा था, जिनमें तमिलनाडु और गोवा ने 1977, कर्नाटक ने 2000, दिल्ली 2001, असम, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं महाराष्ट्र ने 2002 तथा जम्मू-कश्मीर ने 2004 में लागू कर चुके थे। सूचना का तात्पर्य—रिकॉर्ड, दस्तावेज, ज्ञापन, ई-मेल, विचार, सलाह, प्रेस विज्ञप्तियाँ, परिपत्र, आदेश, लाँग पुस्तिका, ठेके सहित कोई भी उपलब्ध सामग्री, निजी निकायों से सम्बन्धित तथा किसी लोक प्राधिकरण द्वारा उस समय के प्रचलित कानून के अन्तर्गत प्राप्त किया जा सकता है। सूचना के अधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दु आते हैं—

1. कार्यों, दस्तावेजों, रिकॉर्डों का निरीक्षण।
2. दस्तावेज या रिकॉर्डों की प्रस्तावना। सारांश, नोट्स व प्रमाणित प्रतियाँ प्राप्त करना।
3. सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना।
4. प्रिंट आउट, डिस्क, फ्लॉपी, टेप, वीडियो कैसेटों के रूप में या कोई अन्य इलेक्ट्रॉनिक रूप में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रमुख प्रावधान (Main Provisions for RTI Act, 2005)

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं—

1. समस्त सरकारी विभाग, पब्लिक सेक्टर यूनिट, किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता से चल रही गैर सरकारी संस्थाएँ व शिक्षण संस्थान आदि विभाग इसमें शामिल हैं। पूर्णतः निजी संस्थाएँ इस कानून के दायरे में नहीं हैं लेकिन यदि किसी

कानून के तहत कोई सरकारी विभाग किसी निजी संस्था से कोई जानकारी माँग सकता है तो उस विभाग के माध्यम से वह सूचना माँगी जा सकती है।

2. प्रत्येक सरकारी विभाग में एक या एक से अधिक जनसूचना अधिकारी बनाये गये हैं, जो सूचना के अधिकार के तहत आवेदन स्वीकार करते हैं, माँगी गई सूचनाएँ एकत्र करते हैं और उसे आवेदनकर्त्ता को उपलब्ध कराते हैं।
3. जनसूचना अधिकारी का दायित्व है कि वह 30 दिन अथवा जीवन व स्वतन्त्रता के मामले में 48 घण्टे के अन्दर (कुछ मामलों में 45 दिन तक) माँगी गई सूचना उपलब्ध कराये।
4. यदि जनसूचना अधिकारी आवेदन लेने से मना करता है, तय समय सीमा में सूचना नहीं उपलब्ध कराता है अथवा गलत या भ्रामक जानकारी देता है तो देरी के लिए ₹ 250 प्रतिदिन के हिसाब से ₹ 25000 तक का जुर्माना उसके वेतन में से काटा जा सकता है। साथ ही उसे सूचना भी देनी होगी।
5. लोक सूचना अधिकारी को अधिकार नहीं है कि वह आपसे सूचना माँगने का कारण जाने।
6. सूचना माँगने के लिए आवेदन फीस देनी होगी केन्द्र सरकार ने आवेदन के साथ ₹ 10 की फीस तय की है। लेकिन कुछ राज्यों में यह अधिक है, बीपीएल कार्डधारकों को आवेदन शुल्क में छूट प्राप्त है।
7. दस्तावेजों की प्रति लेने के लिए भी फीस देनी होगी। केन्द्र सरकार ने यह फीस ₹ 2 प्रति पृष्ठ रखी है लेकिन कुछ राज्यों में यह अधिक है, अगर सूचना तय समय सीमा में नहीं उपलब्ध कराई गई है तो सूचना मुफ्त दी जायेगी।
8. यदि कोई लोक सूचना अधिकारी यह समझता है कि माँगी गई सूचना उसके विभाग से सम्बन्धित नहीं है तो यह उसका कर्त्तव्य है कि उस आवेदन को पाँच दिन के अन्दर सम्बन्धित विभाग को भेजे और आवेदक को भी सूचित करे। ऐसी स्थिति में सूचना मिलने की समय सीमा 30 की जगह 35 दिन होगी।
9. लोक सूचना अधिकारी यदि आवेदन लेने से इन्कार करता है अथवा परेशान करता है तो उसकी शिकायत सीधे सूचना आयोग से की जा सकती है। सूचना के अधिकार के तहत माँगी गई सूचनाओं को अस्वीकार करने, अपूर्ण, भ्रम में डालने वाली या गलत सूचना देने अथवा सूचना के लिए अधिक फीस माँगने के खिलाफ केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग के पास शिकायत कर सकते हैं।
10. जनसूचना अधिकारी कुछ मामलों में सूचना देने से मना कर सकता है। जिन मामलों में सम्बन्धित सूचना नहीं दी जा सकती उनका विवरण सूचना के अधिकार कानून की धारा 8 में दिया गया है। लेकिन यदि माँगी गई सूचना जनहित में है तो धारा 8 में मना की गई सूचना भी दी जा सकती है। जो सूचना संसद या विधानसभा को देने से मना नहीं किया जा सकता उसे किसी आम आदमी को भी देने से मना नहीं किया जा सकता।
11. यदि लोक सूचना अधिकारी निर्धारित समय-सीमा के भीतर सूचना नहीं देते हैं या धारा 8 का गलत इस्तेमाल करते हुए सूचना देने से मना करता है, या दी गई सूचना से सन्तुष्ट नहीं होने की स्थिति में 30 दिनों के भीतर सम्बन्धित जनसूचना अधिकारी के वरिष्ठ अधिकारी यानि प्रथम अपील अधिकारी के समक्ष प्रथम अपील की जा सकती है।
12. यदि आप प्रथम अपील से भी सन्तुष्ट नहीं हैं तो दूसरी अपील 90 दिनों के भीतर केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग (जिससे सम्बन्धित हो) के पास करनी होती है। द्वितीय अपील के तहत केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग के आदेश से सन्तुष्ट न होने पर कोर्ट का दरवाजा खटखटाया जा सकता है। केन्द्र में उच्चतम न्यायालय और राज्य में उच्च न्यायालय में आदेश के खिलाफ या आदेश के बाद भी केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी उसे मानने से इन्कार करता है तो ऐसी परिस्थितियों में जाया जा सकता है।

अन्य देशों के साथ तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Study with Other Countries)

विश्व में सबसे पहले स्वीडन ने सूचना का अधिकार कानून 1766 में लागू किया, जबकि कनाडा ने 1982, फ्रांस ने 1978, मैक्सिको ने 2002 तथा भारत ने इसे 2005 में लागू किया।

विश्व में पाँच देश स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको और भारत के सूचना का अधिकार कानून का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत है—

1. विश्व में स्वीडन पहला ऐसा देश है, जिसके संविधान में सूचना की स्वतन्त्रता प्रदान की है, इस मामले में कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत का संविधान उतनी आजादी प्रदान नहीं करता। जबकि स्वीडन ने 250 वर्ष पूर्व सूचना की स्वतंत्रता की वकालत की है।

2. सूचना माँगने वाले को सूचना प्रदान करने की प्रक्रिया स्वीडन, कनाडा, फ्रांस, मैक्सिको तथा भारत में अलग-अलग है जिसमें स्वीडन सूचना माँगने वाले को तत्काल और नि:शुल्क सूचना देने का प्रावधान है।
3. सूचना प्रदान करने के लिए फ्रांस और भारत में 1 माह का समय निर्धारित किया गया है, हालाँकि भारत ने जीवन और स्वतन्त्रता के मामले में 48 घण्टे का समय दिया गया है, किन्तु स्वीडन अपने नागरिकों को तत्काल सूचना उपलब्ध कराता है, जबकि कनाडा 15 दिन तथा मैक्सिको 20 दिन में सूचना प्रदान कर देता है।
4. सूचना न मिलने पर अपील प्रक्रिया भी लगभग एक ही समान है।
5. स्वीडन में सूचना न मिलने पर न्यायालय में जाया जाता है। कनाडा तथा भारत में सूचना आयुक्त जबकि फ्रांस में संवैधानिक अधिकारी एवं मैक्सिको में 'द नेशनल ऑन एक्सेस टू पब्लिक इनफॉरमेशन' अपील और शिकायतों का निपटारा करता है।
6. स्वीडन किसी भी माध्यम द्वारा तत्काल सूचना उपलब्ध कराता है जिनमें वेबसाइट पर भी सूचना जारी की जाती है। कनाडा और फ्रांस अपने नागरिकों को किसी भी रूप में सूचना दे सकता है, जबकि मैक्सिको इलेक्ट्रॉनिक रूप से सूचनाओं को सार्वजनिक करता है तथा भारत प्रति व्यक्ति को सूचना उपलब्ध कराता है।
7. गोपनीयता के मामले में स्वीडन ने गोपनीयता एवं पब्लिक रिकॉर्ड एक्ट 2002, कनाडा ने सुरक्षा एवं अन्य देशों से सम्बन्धित सूचनाएँ मैनेजमेंट ऑफ गवर्नमेण्ट इनफॉरमेशन होल्डिंग 2003, फ्रांस ने डाटा प्रोटेक्शन एक्ट 1978 तथा भारत ने राष्ट्रीय, आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा तथा अधिनियम की धारा 8 में उल्लिखित प्रावधानों से सम्बन्धित सूचनाएँ देने पर रोक है।

प्र.3. लोकयुक्त की अवधारणा के विकास एवं इसके अधिनियम, 2013 को विस्तृत रूप से समझाइए।

उत्तर

लोकायुक्त की अवधारणा का विकास
(Concept Development of Lokayukta)

लोकपाल तथा लोकायुक्त अधिनियम, 2013 ने संघ (केन्द्र) के लिये लोकपाल और राज्यों के लिये लोकायुक्त संस्था की व्यवस्था की। ये संस्थाएँ बिना किसी संवैधानिक दर्जे वाले वैधानिक निकाय हैं। ये ओम्बुड्समैन का कार्य करते हैं और कुछ निश्चित श्रेणी के सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच करते हैं। लोकपाल यानी ओम्बुड्समैन संस्था की आधिकारिक शुरुआत वर्ष 1809 में स्वीडन में हुई। 20वीं शताब्दी में एक संस्था के रूप में ओम्बुड्समैन का विकास हुआ और यह द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तेजी से आगे बढ़ा। 1962 में न्यूजीलैंड और नॉर्वे ने यह प्रणाली अपनायी और ओम्बुड्समैन के विचार का प्रसार करने में यह बेहद अहम सिद्ध हुआ। गुयाना प्रथम विकासशील देश था, जिसने वर्ष 1966 में ओम्बुड्समैन का विचार अपनाया। इसके बाद मॉरीशस, सिंगापुर, मलेशिया के साथ भारत ने भी इसे अपनाया। भारत में संवैधानिक ओम्बुड्समैन का विचार सर्वप्रथम वर्ष 1960 के दशक की शुरुआत में कानून मन्त्री अशोक कुमार सेन ने संसद में प्रस्तुत किया था। लोकपाल एवं लोकायुक्त शब्द प्रख्यात डॉ० एल०एम० सिंघवी ने पेश किया।

वर्ष 1966 में प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने सरकारी अधिकारियों (संसद सदस्य भी शामिल) के विरुद्ध शिकायतों को देखने के लिये केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर दो स्वतन्त्र प्राधिकारियों की स्थापना की सिफारिश की थी। वर्ष 1968 में लोकसभा में लोकपाल विधेयक पारित हुआ, लेकिन लोकसभा के विघटन के साथ ही यह कालातीत हो गया और इसके बाद से यह लोकसभा में कई बार कालातीत हुआ। वर्ष 2002 में एम०एन० वेंकटचलैया की अध्यक्षता में संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिये गठित आयोग ने लोकपाल व लोकायुक्तों की नियुक्ति की सिफारिश करते हुए प्रधानमन्त्री को इसके दायरे से बाहर रखने की बात कही। वर्ष 2005 में वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की कि लोकपाल का पद जल्द-से-जल्द स्थापित किया जाये। वर्ष 2011 तक विधेयक पारित करने के लिये आठ प्रयास किये गये, लेकिन सभी में असफलता ही मिली तथा इसी वर्ष में सरकार ने प्रणब मुखर्जी की अध्यक्षता में मन्त्रियों का एक समूह भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने हेतु सुझाव देने तथा लोकपाल विधेयक के प्रस्ताव का परीक्षण करने के लिए गठित किया। अन्ना हजारे के नेतृत्व में 'भ्रष्टाचार के विरुद्ध भारत आन्दोलन' ने केन्द्र में तत्कालीन UPA सरकार पर दबाव बनाया और इसके परिणामस्वरूप संसद के दोनों सदनों में लोकपाल व लोकायुक्त विधेयक, 2013 पारित हुआ। 1 जनवरी, 2014 को राष्ट्रपति ने इसे अपनी सम्मति दे दी और 16 जनवरी, 2014 को यह लागू हो गया।

लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013
(Lokpal and Lokayukta Act, 2013)

लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 को सामान्यत: लोकपाल अधिनियम के रूप में सन्दर्भित किया जाता है, जो संघ के लिए लोकपाल की स्थापना और राज्य के लिए लोकायुक्त का प्रावधान करता है। यह अधिनियम पूरे भारत और बाहर कार्यरत 'लोक-सेवकों' पर भी लागू होता है।

लोकतन्त्र में लोकायुक्त, आयकर विभाग तथा एन्टी-करप्शन ब्यूरो के साथ मिलकर कार्य करेंगे और भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिए भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करने में लोगों की सहायता करेंगे। विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त की संरचना; और उसकी भूमिका में विवेकाधीन अन्तर है। 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह प्रयास किया गया कि सभी राज्यों में मॉडल विधान के अनुरूप सभी लोकायुक्तों में समरूपता लायी जाये, परन्तु राज्यों ने इस प्रयास में अवरोध पैदा किये। जब तक केन्द्र सरकार नेतृत्व नहीं करती और राज्यों को इस एकरूपता की सहमति के लिए तैयार नहीं कर लेती, तब तक ऐसी एकरूपता सम्भव नहीं है। फिर भी, इस क्षेत्र में विशेषज्ञों द्वारा दिये गये निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देने की आवश्यकता है—

1. पूर्व मन्त्री और सिविल सेवकों को भी इस अधिनियम के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए।
2. मुख्यमन्त्री को भी लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में लाया जाना चाहिए।
3. लोकायुक्त के पास स्वयं से जाँच आरम्भ करने की शक्ति होनी चाहिए।
4. लोकायुक्त के पास स्वयं की जाँच एजेन्सी होनी चाहिए अथवा यदि वह अन्य एजेन्सी को जाँच सौंपता है तो जाँच तीव्र गति से सम्पन्न की जानी चाहिए।
5. सरकारी अधिकारियों द्वारा लोकायुक्त के सुझावों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यदि कोई जानकारी देने में जान-बूझकर विलम्ब कर रहा है तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिए।
6. लोकायुक्त की सिफारिशों के क्रियान्वयन की मॉनीटरिंग हेतु समिति का गठन किया जाना चाहिए।
7. लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 को संशोधित करने के लिए लोकपाल एवं लोकायुक्त (संशोधन) विधेयक, 2016 संसद ने जुलाई 2016 में पारित किया।
8. इसके द्वारा यह निर्धारित किया गया कि विपक्ष के मान्यता प्राप्त नेता के अभाव में लोकसभा में सबसे बड़े एकल विरोधी दल का नेता चयन समिति का सदस्य होगा।
9. इसके द्वारा वर्ष 2013 के अधिनियम की धारा 44 में भी संशोधन किया गया जिसमें प्रावधान है कि सरकारी सेवा में आने के 30 दिनों के भीतर लोकसेवक को अपनी सम्पत्तियों और दायित्वों का विवरण प्रस्तुत करना होगा।
10. संशोधन विधेय के द्वारा 30 दिन की समय-सीमा समाप्त कर दी गई, अब लोकसेवक अपनी सम्पत्तियों और दायित्वों की घोषणा सरकार द्वारा निर्धारित रूप में एवं तरीके से करेंगे।
11. यह ट्रस्टियों और बोर्ड के सदस्यों को भी अपनी तथा पति/पत्नी की परिसम्पत्तियों की घोषणा करने के लिए दिये गये समय में भी बढ़ोतरी करता है, उन मामलों में जहाँ वे एक करोड़ रुपये से अधिक सरकारी या 10 लाख रुपये से अधिक विदेशी धन प्राप्त करते हों।

प्र.4. लोकपाल के क्षेत्राधिकार एवं शक्तियों का विस्तृत वर्णन कीजिए। इसकी सीमाओं का भी उल्लेख कीजिए।

उत्तर

लोकपाल का क्षेत्राधिकार एवं शक्तियाँ
(Jurisdiction and Powers of Lokpal)

इसका क्षेत्राधिकार एवं शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

1. लोकपाल के क्षेत्राधिकार में प्रधानमन्त्री, मन्त्री, संसद सदस्य, समूह ए, बी, सी और डी अधिकारी तथा केन्द्र सरकार के अधिकारी शामिल हैं।
2. लोकपाल का प्रधानमन्त्री पर क्षेत्राधिकार केवल भ्रष्टाचार के उन आरोपों तक सीमित रहेगा जो कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, सुरक्षा, लोक व्यवस्था, परमाणु ऊर्जा और अन्तरिक्ष से सम्बद्ध न हों।
3. संसद में कही गई किसी बात या दिये गये वोट के मामले में मन्त्रियों या सांसदों पर लोकपाल का क्षेत्राधिकार नहीं होगा।
4. इसके क्षेत्राधिकार में वह व्यक्ति भी शामिल है जो ऐसे किसी निकाय/समिति का प्रभारी (निदेशक/प्रबन्धक/सचिव) है या रहा है जो केन्द्रीय कानून द्वारा स्थापित हो या किसी अन्य संस्था का जो केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्तपोषित/नियन्त्रित हो और कोई अन्य व्यक्ति जिसने घूस देने या लेने में सहयोग दिया हो।

5. लोकपाल अधिनियम यह आदेश देता है कि सभी लोकसेवक अपनी तथा अपने आश्रितों की परिसम्पत्तियों व देयताओं को प्रस्तुत करें।
6. इसके पास CBI की जाँच करने तथा उसे निर्देश देने का अधिकार है।
7. यदि लोकपाल ने कोई मामला CBI को सौंपा है तो बिना लोकपाल की अनुमति के ऐसे मामले के जाँच अधिकारी को स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता।
8. लोकपाल की जाँच इकाई को एक सिविल न्यायालय के समान शक्तियाँ दी गई हैं।
9. विशेष परिस्थितियों में लोकपाल को उन परिसम्पत्तियों, आमदनी प्राप्तियों और लाभों को जब्त करने का अधिकार है जो भ्रष्टाचार के साधनों से पैदा या प्राप्त की गई है।
10. लोकपाल को ऐसे लोकसेवक के स्थानान्तरण या निलम्बन की सिफारिश करने का अधिकार है जो भ्रष्टाचार के आरोपों से जुड़ा है।
11. लोकपाल को प्राथमिक जाँच के दौरान रिकॉर्ड को नष्ट करने से रोकने का निर्देश देने का अधिकार है।

सीमाएँ (Limitations)

इसकी सीमाएँ निम्नलिखित हैं—

1. लोकपाल संस्था भारत की प्रशासनिक संरचना में भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ाई में बेहद जरूरी परिवर्तन ला सकती है, लेकिन इसके साथ-ही-साथ उसमें कुछ खामियों और कमियाँ भी हैं जिन्हें दुरुस्त किये जाने की आवश्यकता है।
2. संसद द्वारा लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 पारित होने के पाँच वर्ष बाद किसी तरह से लोकपाल की नियुक्ति हो पाई, जो राजनीतिक इच्छाशक्ति में कमी का संकेतक है।
3. लोकपाल अधिनियम में राज्यों से भी इसके लागू होने के एक साल के भीतर लोकायुक्त नियुक्त करने के लिये कहा गया है, परन्तु केवल 16 राज्यों ने लोकायुक्त की स्थापना की।
4. लोकपाल राजनीतिक प्रभाव से मुक्त नहीं है क्योंकि स्वयं नियुक्ति समिति राजनीतिक दलों के सदस्यों से गठित है।
5. लोकपाल की नियुक्ति में एक प्रकार से चालाकी की जा सकती है क्योंकि यह निर्धारित करने का कोई मानदण्ड नहीं है कि कौन एक 'प्रख्यात न्यायविद' या 'सत्यनिष्ठा का व्यक्ति' है।
6. वर्ष 2013 का अधिनियम व्हिसल ब्लोअर को कोई ठोस सुरक्षा नहीं देता। यदि आरोपी व्यक्ति निर्दोष पाया जाए तो शिकायतकर्त्ता के विरुद्ध जाँच शुरू करने का प्रावधान लोगों को शिकायत करने से हतोत्साहित ही करेगा।
7. इसकी सबसे बड़ी कमी न्यायपालिका को लोकपाल के दायरे से बाहर रखना है।
8. लोकपाल को कोई संवैधानिक आधार नहीं दिया गया है और लोकपाल के विरुद्ध अपील का कोई पर्याप्त प्रावधान नहीं है।
9. लोकायुक्त की नियुक्ति से सम्बन्धित विशिष्ट विवरण पूरी तरह से राज्यों पर छोड़ दिया गया है।
10. कुछ सीमा तक CBI की कार्यात्मक स्वतन्त्रता की आवश्यकता को इसके निदेशक की नियुक्ति में इस अधिनियम में संशोधन करके पूरा किया गया है।
11. भ्रष्टाचार के विरुद्ध शिकायत उस तिथि से सात साल के बाद पंजीकृत नहीं की जा सकती जिस तिथि को ऐसी शिकायत में कथित अपराध किये जाने का उल्लेख हो।

❑

■ *यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।*

■ *इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।*

■ *इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप* info@vidyauniversitypress.com *पर भी ई-मेल कर सकते हैं।*

मॉडल पेपर

अधिकारों एवं विधियों के प्रति जागरूकता

B.A.-I (SEM-I) [पूर्णांक : 75

नोट—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—सभी पाँच प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।*

1. भारत के संविधान की प्रस्तावना में किन-किन बातों को सम्मिलित किया जाता है?

2. अधिकार के किन्हीं दो तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।

3. लैंगिक विषमता से लिंग भेदभाव किस प्रकार बढ़ता है?

4. किस राज्य ने सर्वप्रथम सूचना का अधिकार अधिनियम बनाया था?

5. लोक आयुक्त की शक्तियों एवं कार्यों को स्पष्ट कीजिए।

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **2 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित हैं।*

6. किसी देश के लिए संविधान की आवश्यकता और महत्त्व का वर्णन कीजिए।

अथवा समानता के मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

7. अधिकार राज्य की सत्ता पर, कुछ सीमाएँ लगाते हैं। उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

अथवा भारतीय महिलाओं के समक्ष लैंगिक विषमता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली दो प्रमुख समस्याएँ बताइए।

8. मानवाधिकारों से सम्बन्धित विश्वव्यापी घोषणा के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

अथवा लोक सूचना अधिकारी के प्रमुख कार्य लिखिए।

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **3 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।*

9. संविधान की प्रस्तावना के आधार पर भारतीय शासन व्यवस्था के स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए।

अथवा समानता से क्या आशय है? समानता के अन्तर्गत कौन-सी बातें आती हैं? समानता के विविध रूपों का विवेचन कीजिए।

10. विश्वास की स्वतन्त्रता अथवा धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार की विवेचना कीजिए।

अथवा अधिकार की परिभाषा देते हुए उसका वर्गीकरण कीजिए।

11. शिक्षा का अधिकार अधिनियम में हितधारकों की क्या भूमिका निर्धारित की गई है?

अथवा नागरिक अधिकार-पत्रों में कौन-से मुख्य बिन्दु समाविष्ट होते हैं? उल्लेख कीजिए।

12. लैंगिक विषमता या संवेदनशीलता से आपका क्या आशय है? इसके सामाजिक पहलू का विस्तृत वर्णन कीजिए।

अथवा 'विभिन्नता में एकता' भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। स्पष्ट कीजिए।

13. लोकयुक्त की अवधारणा के विकास एवं इसके अधिनियम, 2013 को विस्तृत रूप से समझाइए।

अथवा लोकपाल के क्षेत्राधिकार एवं शक्तियों का विस्तृत वर्णन कीजिए। इसकी सीमाओं का भी उल्लेख कीजिए।

❑

TOUCH 'n' PASS